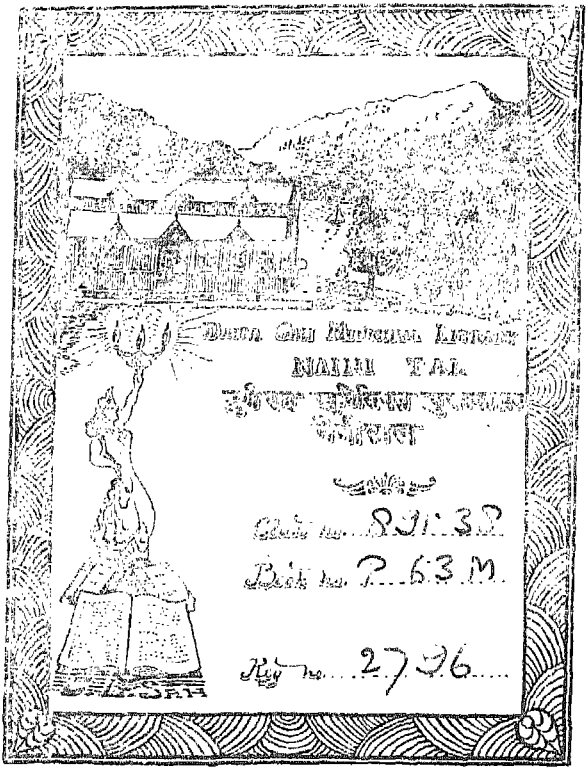

Durga Sah Municipal Library
Naini Tal
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class no. 891.3P
Book no. P63M
Reg no. 2796

मलयालम

(मलयालम की नौ उत्कृष्ट कहानियों का अनुवाद)

लेखक :
श्री कारूर नीलकण्ठ पिल्ला

अनुवादिका :
श्रीमती भारती विद्यार्थी, बी. ए.; एल. टी.

प्रकाशक :
राजहंस प्रकाशन
दिल्ली ।

प्रकाशक :
राजहंस प्रकाशन,
सदर बाजार, दिल्ली ।

Durga Sah Municipal Library,
Naini Tal
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class No, विभाग 891.38
Book No, पुस्तक 063 M
Received On ...

प्रथम-संस्करण १६५२
मूल्य दो रुपये

2796

मुद्रक :
राजहंस प्रेस,
सदर बाजार, दिल्ली ।

दो शब्द

'मलयानिल' मलयालम के सुप्रसिद्ध कहानी लेखक श्री कारूर नीलकण्ठ पिल्ला की नौ उत्कृष्ट कहानियों का संग्रह है। श्री कारूर सर्व साधारण विशेषकर ग्रामीण जनता के सुख-दुःख, संघर्ष और सफलता-विफलता का भावोत्पादक वर्णन करने में सिद्धहस्त हैं। छोटी-छोटी घटनाओं के आधार पर महत् और उदात्त भावनाओं की सहज सुलभ सृष्टि करना, विषय के अनुरूप वातावरण का निर्माण करना और मानव हृदय की क्रिया-प्रतिक्रिया का मार्मिक और प्रभावशाली चित्रण करना श्री कारूर की सुखद सरल शैली की विशेषता है। आपकी २०० से अधिक कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं। मद्रास सरकार ने आपकी उत्कृष्ट रचनाओं के लिये आपको पुरस्कृत किया है।

श्री कारूर का जन्म १९९८ में ट्रावनकोर के एटुमानूर शहर (कोट्टयम तालूक) में एक साधारण परिवार में हुआ था। मलयालम स्कूल की शिक्षा समाप्त करके आप शिक्षक का काम करने लगे। ३५ साल की उम्र में आपने अपनी पहली कहानी लिखी थी। ५ साल के बाद एक मासिक पत्रिका के लिये विशेष दिलचस्पी के साथ कहानियां लिखने लगे। आपकी कला में आधुनिक कथा-कला के सब गुण मिलते हैं। आपने मलयालम साहित्य की सेवा करने के लिये एक साहित्य प्रवर्त्तक संघ की स्थापना की है जिस के मंत्री के रूप में आप प्रारम्भ से ही काम कर रहे हैं। संघ ने मलयालम की प्रकाशन-संस्थाओं में एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है।

मलयालम के प्रगतिशील उपन्यासकार श्री तकषी शिव शंकर पिल्ला की 'तोट्टियुट मकन्' उपन्यास का 'चुनोती' नाम से हिन्दी जगत को भेंट करने के बाद मलयालम के सुन्दर साहित्य को हिन्दी में प्रस्तुत करने की दिशा में यह मेरा दूसरा प्रयत्न है। जहां तक मुझे पता है, उक्त उपन्यास की तरह यह मलयालम कहानियों की प्रथम पुस्तक है जो हिन्दी में प्रकाशित हो रही है। अगर हिन्दी पाठकों को यह पसन्द आयी तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूंगी।

अनुवादिका
भारती विद्यार्थी

मलयानिल

●

(कहानी-संग्रह)

माँ

आंख खुद जाय तो पता न चले, ऐसा अन्धकार था—किसी भी प्रकार का भारी अहित करने का साहस देने वाला। दुनिया ऐसे ही अन्धकार में डूब गई।

अगले दिन उस घरवालों ने अन्धकार-पुत्री उषा के काले मुख का दर्शन किया। बाल-सूर्य ने, निरुन्मेष, उनसे एक प्रश्न पूछा और आसमान के नीले परदे के भीतर जा छिपा। गांव वालों ने भी वही सवाल किया,

"लड़की कहाँ है ?"

चारों तरफ खोज होने लगी। आस-पास, अड़ोस-पड़ोस, सब जगह बिजली की तरह खबर फैल गई। और जैसे फैली वैसे ही दब भी गई। लेकिन, 'लड़की कहाँ है ?' सवाल का जवाब नहीं मिला।

गाँव वालों ने अनुमान के आधार पर, बीती घटनाओं से उस सवाल का जवाब निकालने की कोशिश की। लेकिन उस पाताल-गर्त से कचरे का एक टुकड़ा भी नहीं निकला। वह सवाल, बिना जवाब, जैसा का तैसा रह गया।

❀ ❀ ❀

एक महीने के बाद की बात है। तिरुवनन्तपुरम में एक पेनशन-प्राप्त अफ़सर के घर में नौकरानी के काम के लिये एक

सिफ़ारिश पहुँची। उम्मीदवार के बारे में, उसी के मुँह से, लोगों ने सुना कि वह गुरुवायूर की रहने वाली एक अनाथ विधवा है, नाम है माधवी। ये सब बातें सच हैं या झूठ—इसकी खोज पूछ करने की उन्हें ज़रूरत नहीं मालूम हुई।

मालकिन को वह पहली ही मुलाकात में पसन्द पड़ गई। काला रंग, आँख की कानी, गाल फूले हुए, उदास चेहरा, छोटे कान, भूरे बाल—ऐसा था उसका रूप-रंग। एक बात और, होठ थे पीले और पतले। बस, मालकिन ने उसे सहर्ष रख लिया।

माधवी वहाँ नौकरानी होकर रहने लगी। शान्ति से रहने में उसे अपनी कुरूपता से मदद मिली।

मालकिन को नौकरानी से कोई शिकायत नहीं हुई।

कभी-कभी उसे आँख पोंछते देखकर एक दिन मालकिन ने अपने पति से कहा, "बेचारी हमेशा अपने पति के बारे में सोचती रहती है।"

घर के बच्चे को सुलाते समय माधवी ने एक बार लोरियाँ गायीं। सुनकर घर वालों ने पूछा, "तुम ने गाना सीखा है, माधवी ?"

"नहीं, पहले जिस घर में काम करती थी वहाँ लोगों को यह गाते सुना था," उसने जवाब दिया।

एक बार घर के लड़के को हिसाब बनाते समय गलती करते देखकर माधवी ने उसे समझा दिया। इस पर मालकिन ने पूछा, "तुमने कहाँ तक पढ़ा है ?"

इस सवाल के जवाब में भी उसने यही कहा कि जिस घर में वह काम करती थी वहाँ के बच्चों को इस तरह का हिसाब लगाते देखा था।

एक दिन मालकिन ने पति से कहा, "माधवी ने अपने बारे में जो कुछ कहा है वह सब सच है, ऐसा नहीं लगता।"

"क्यों ?"

"उसकी बात-चीत और उसका तौर-तरीका देखकर ऐसा मालूम होता है कि वह नौकरानी होकर काम करने वालों की कोटि की नहीं है ।"

"तब"

"शायद घर से किसी के साथ भाग निकली होगी और वह या तो मर गया होगा या इसे त्याग दिया होगा ।"

* * *

माधवी पूरे चार महीने वहाँ रही । घर का काम-काज करने में वह असमर्थ हो गई ।

तनख़ाह के चार रुपये लेकर एक दिन वह वहाँ से चल दी । 'कहाँ जायगी ?'—घरवालों ने नहीं पूछा । उसका कोई खास लक्ष्य नहीं था, उसको देखने पर ऐसा ही लगता था । उपवास में दिन काटते और भीख मांगते उसके दो महीने और बीत गये ।

तब, सब तरह की सुविधाओं के बीच, सेवा-शुश्रूषा पाकर उसका प्रसव हुआ । दुःख के गहरे अन्धकार से, आंसुओं के सरोवर से,—स्वतंत्रता के प्रकाश में, मन्द मुस्कान के अगाध सागर में उसके आनन्द का उदय हुआ ।—वह था एक पुत्र ।

माधवी जब अस्पताल से बाहर आई तब उसके पास उसकी कुल सम्पत्ति थी, एक बच्चा और तीन रुपये एक आना नक़द ।

माँ और बच्चा—दोनों दयनीय स्थिति में अपने दिन बिताने लगे । माताएँ उन्हें देखकर अनुकम्पा से भर जातीं और उदारता-पूर्वक कुछ न कुछ दे देतीं ।

भीख माँगने के लिये घूमते-घूमते उसकी नजर एक बड़े मकान पर पड़ी । उसे उसने कई बार देखा; बड़े गौर से देखा ।

2796

उस नीरव घर को देखकर वह आश्वसित हो गई।

एक रात को वह उस घर के फाटक तक गई और वहाँ थोड़ी देर ठहरकर लौट आई।

एक दिन वह रात के अंतिम प्रहर में एक चोर की तरह उस मकान के बाहरी बरामदे तक गई। वहाँ पहुँचते ही उसका दिल जोरों से धड़कने लगा। उसके हाथ-पांव सन्न हो गये। वह वहीं बैठ गई। एक मानसिक संघर्ष के साथ उसने एक कपड़ा बिछाकर अपने सोये हुए बच्चे को उस पर सुला दिया और एक दूसरे कपड़े से ओढ़ा दिया।

वह वहाँ हाथ जोड़े बच्चे को निहारते कुछ क्षण बैठी रही। बच्चे पर आँसू गिरने से वह जग न जाय, इस डर से उसने अपने आँसू पोंछ डाले। धड़कते दिल से उसे चूम लिया। मन ही मन उसको आशीर्वाद दिया। तब उठ कर धीरे-धीरे चल दी।

फाटक तक जाकर वह लौट पड़ी। अपने लाड़ले को फिर एक बार गोद में उठा लिया। बच्चे के चेहरे पर उसकी आँखों से तप्त अश्रु-कण बिखरे। बच्चा चौंक कर जग गया।

पुत्र-वात्सल्य की प्रतिमूर्ति उस माँ ने बच्चे को दूध पिलाने की कोशिश की, पर वह बच्चा 'पुत्र को त्यागने वाली' माँ के प्रति शायद तिरस्कार प्रकट करने के लिये 'माँ–आ–माँ–आ' करके बिना पिये ही चिल्लाने लगा।

ऊपर लोगों के जग जाने की आवाज सुनाई पड़ी। मकान में रोशनी हो गई। उसके बाद दरवाजा खुलने की आवाज हुई। उस स्त्री ने बच्चे को बिना एक बार फिर चूमे ही जल्दी से नीचे रख दिया और चुपके से निकल भागी। फाटक के पास पहुँचकर पीछे मुड़कर देखा। कोई दो मंजिले से रोशनी लेकर नीचे आ रहा था। वह और तेजी से भागी, दौड़कर दूर निकल गई और सन्तोष की एक लम्बी सांस ली।

निस्सहाय, सिर्फ रोना जानने वाले, बच्चे को उसकी माँ ने त्याग दिया—उसी की भलाई के लिये।

* * *

अगले दिन सवेरे बालरामपुरम गांव में लोगों ने उसे पहले-पहल प्रेत के वेश में देखा। सड़क पर निकल कर आए हुए एक लड़के ने उसे देखा, और घर जाकर कहा। "बाप रे! एक पगली आई है।"

वह कभी रोती, कभी पैशाचिक हंसी हंसती और कभी लोरियां गाती।

छोटे बच्चे सामने पड़ते तो वह आंखें भरकर उन्हें देखने लगती, गोद में उठाने के लिये आगे बढ़ती, भीख में जो पैसे मिलते उनमें से कुछ बचाकर केले और मिठाई खरीदती और बच्चों को खिला देती। कुछ बच्चे डरकर लेते नहीं थे। कभी-कभी वह खिलौने भी खरीदती और बच्चे वाले किसी घर के प्रांगण में उन्हें डालकर चली जाती।

एक दिन उसने एक बढ़िया रेशमी कुर्ता खरीदा और एक भिखारिन के छोटे बच्चे को पहना दिया। इस तरह क्या-क्या करके वह अपने मन को तसल्ली देने लगी।

ऐसा करते हुए वह कभी-कभी भूखी भी रह जाती। लोग उसे 'पगली' कहकर पुकारते।

वह अपने बेटे को देखने नहीं गयी, सिर्फ उसकी भलाई के ख्याल से। जो भी बच्चे उसके सामने आये, सबों को उसने प्यार किया, सबों को आशीर्वाद दिया और सबों के लिये भगवान् से प्रार्थना की।

दो साल उसने किसी तरह इधर उधर घूमते फिरते बिता दिये। एक कुरूप युवती होने के कारण उसे कोई खास तकलीफ नहीं हुई। ऐसे तो पगली-सी थी ही।

तिरुवनन्तपुरम—उस बड़े शहर में शुरू के कुछ महीनों के प्रवास में उसने अपने व्यक्तित्व की जो क्षीण रेखा खींची थी, वह मिट गयी। वहां जिन्होंने उसे देखा था, वे अब उसे देखकर पहचान नहीं सकते थे। उसमें इतना परिवर्तन हो गया था।

वह बेचारी दुबारा तिरुवनन्तपुरम गयी। वहां की भीड़ में वह मिल गयी। समाज के निम्नतम वर्ग का वह एक अंग बन गयी।

उसने उस मकान को भी खोजकर देख लिया। उसकी नजर घर के भीतर दौड़ गयी। लेकिन उसके पांव आगे नहीं बढ़े।

कई बार वह फाटक तक गयी, अन्दर झांका और चुपचाप लौट गयी।

उस मकान के आस-पास की वायु का आस्वादन करने में उसे एक विशेष आनन्द आता था। उसके बेटे की सांस उस वायु में मिली रहती न! वहां की हवा का स्पर्श पाकर वह आह्लादित हो जाती, क्योंकि वह उसके लाड़ले के शरीर का स्पर्श करके आती थी।

उस रास्ते से वह भिखारिन रोज आने-जाने लगी। उसकी नजर थोड़ी देर के लिये घर के भीतर जा टिकती। लेकिन वह बहुत पास नहीं जाती। वह वहाँ से भीख भी नहीं मांगती।

उसके मन में यह सवाल उठता, "क्या उसी घर में मेरा जन्म-साफल्य है?"

वह प्रति दिन स्नान करके श्रीकण्ठेश्वर के मन्दिर में दर्शन के लिये जाती। मन्दिर से आध आने का भात खरीदकर खाती। इसके लिये भीख में उसे काफी पैसे मिल जाते थे। बाकी समय अपने बेटे के मकान के पास घूमने और बैठे रहने में ही बिताती। इस तरह माधवी मन से मन्दिर की एक पुजारिन और बाहर से एक भिखारिन बनकर जीवन बिताने लगी।

एक दिन माधवी ने एक बच्चे को उस मकान के बन्द फाटक के भीतर विस्तृत प्रांगण में खेलते देखा। वह, गले में 'पुलियाम्मोतिरम्*', हाथ में कंकण, कमर में सोने की करधनी और पांव में सोने के बजने वाले पायल पहने, एक मोटा तगड़ा बालक था।

उसे देखकर माता के हृदय की क्या स्थिति हुई होगी यह वर्णनातीत है। कुछ देर के बाद माधवी ने फाटक खोला और अधीरता से अन्दर घुसी। जीवन के क्लेश सहते-सहते उसका चेहरा विकृत हो गया था। कुरूप तो वह थी ही। उसकी अधीरता ने उसके चेहरे को और भी डरावना बना दिया।

बच्चा उसे देखते ही डर के मारे 'माँ' कहकर चिल्लाया और पास खड़ी दाई के पास दौड़कर गया और जोर से उससे लिपट गया। बच्चे के मुँह से 'मां' शब्द निकलते ही माधवी ने आगे बढ़कर कहा, "बेटा! लो, यह सीटी लो," और उसकी ओर एक सीटी बढ़ाते हुये पगली की तरह हँसने लगी।

"जरा हटकर खड़ी होओ न! बच्चे को डरा दिया," कह कर भिखारिन को डांटती हुई दाई बच्चे को गोद में उठाकर शान्त करने लगी।

बच्चे ने सीटी के लिये हाथ नहीं बढ़ाया। उसने भिखारिन की ओर देखा तक नहीं।

लेकिन भिखारिन की आँखें बच्चे पर ही गढ़ी रहीं। जब

---

*पुलियाम्मोतिरम लड़कों को पहनाने का एक आभूषण है। विशेष प्रकार के हरे पत्थर के टुकड़ों को बाघ के नाखून की शकल में काटकर सोने से मढ़वा दिया जाता है और रेशमी धागे से गूँथ कर हार के तौर पर बच्चों को पहनाया जाता है।

तक वह हँसा नहीं तब तक वह हँसती रही। उसने उसे हँसाने के लिये तरह-तरह से कोशिश की।

उसके तमाशे देखकर दाई भी हँस पड़ी। माधवी ने दुबारा सीटी बढ़ा दी। दाई ने कहा, "हां, अब बच्चा तुम्हारी सीटी लेकर खेलेगा!"

माधवी की आखें डबडबा गईं।

बच्चे ने हाथ बढ़ा दिया।

दाई ने मना नहीं किया।

मां ने बेटे को सीटी दे दी। और वहाँ से तुरन्त निकल गई। फाटक के बाहर पहुँचने के बाद उसके कानों में सीटी की आवाज पड़ी। उसकी गति में तेजी आ गई।

उसने वहाँ के लोगों से सुना कि उस मकान की मालकिन के एक बच्चा था, जो मर गया। भगवान् ने उनके संतप्त हृदय की पुकार सुनी और एक लड़का भेज दिया। उस बच्चे को देखकर कोई नहीं कह सकता कि घरवाली ने उसे जन्म नहीं दिया है। उस बच्चे की कहीं कोई मां होगी तो उस प्रेत का भी बड़ा भाग्य हो गया क्योंकि उस घर की सारी सम्पत्ति का अधिकारी वह लड़का ही बनेगा।

माधवी ने जो देखना चाहा, देख लिया; जो जानना चाहा, जान लिया।

उसके बाद माधवी ने उस घर के फाटक के भीतर पाँव नहीं रखा। उस रास्ते से आना-जाना भी कम कर दिया।

कई दिनों बाद जब कभी वह रास्ते से निकल जाती और अपने बेटे को देख लेती तब उसकी आँखों में एक चमक आ जाती और उसका हृदय भर आता।

* * *

एक दिन माधवी ने बच्चे को स्कूल जाते देखा। उसके बाद वह रास्ते पर छिप कर खड़ी रहने लगी और नियमपूर्वक बच्चे को प्रतिदिन देखने लगी।

"तुम्हें तो उन्होंने कहीं सड़क पर से उठा कर पाया है,"—उसने एक दिन एक लड़के को उस बच्चे से कहते सुना। फिर एक दिन एक लड़के को कहते सुना, "तुम्हारी माँ एक तालाब-साफ-करने-वाली है।" उसने देखा, उसके बच्चे का चेहरा सुन कर उदास हो गया था।

उसके साथी कभी-कभी उसे 'अनाथ' भिखारिन का बेटा, बे-घरवाला, आदि आदि कहकर चिढ़ाया करते थे। उन्हें ये शब्द कह कर उसे दुःखी बनाने में एक मजा आता था।

बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता गया उसकी पढ़ाई भी बढ़ती गयी। माधवी के चेहरे पर भी आनन्द प्रतिबिम्बित होने लगा।

* * *

उस घर के मालिक का देहान्त हो गया। पत्नी ही सारी सम्पत्ति की अधिकारिणी बन गयी।

* * *

लड़का अब लॉ कालेज में पढ़ने लगा।

उसकी शादी निश्चित हो गयी। वधु के पिता एक बड़े अफसर थे।

माधवी भी शादी में शामिल हुई। लेकिन अतिथि के तौर पर नहीं। मजदूरिन के तौर पर। चावल की सफाई, मिर्च की कुटाई, घर की सफाई आदि कामों के लिये ऐसे अवसरों पर निस्सहाय स्त्रियां प्रायः काम के लिये पहुँच जाती हैं। माधवी उनमें एक हो गयी।

शादी के दिन उसका हृदय आनन्द से भरा था। उसके मुंह

से उस दिन जो भी शब्द निकले सब आनन्दित करने वाले चुटकुले थे। स्नान और मन्दिर-दर्शन के बाद भगवत-प्रसाद रूप चन्दन का टीका माथे पर लगाये उस दिन उसने जो कुछ किया, सब गरीब दुःखियों की सहायता का ही काम था।

भोज के बाद जूठे पत्ते उठा उठाकर उसने उस विवाहोत्सव में एक विरोधाभास की तरह घर के पिछवाड़े के प्रांगण में इकट्ठे भिखारियों को दिये, जो वहाँ कुत्तों से छीना-झपटी करके मालिक की उदारता से जूठन में कुछ पाने की प्रतीक्षा में आपस में गाली-गलौज बकते और ईर्ष्या प्रकट करते हुए बैठे थे।

उस विवाहोत्सव की इस अप्रकट मेजबान ने अपने खर्च से थोड़ा पान और सुपारी खरीद रखी थी। उसे उसने उन भिखारी-अतिथियों में बाँट दिया। उन भिखारियों ने अपनी उस सरदारिन को (वह भी उन्हीं में से एक थी) आशीर्वाद दिये, "आपके बच्चों का भला हो।"

विवाह की रस्म पूरी हो जाने पर उसके साथ काम करने वाली एक स्त्री ने उस आनन्दमयी से कहा, "वाह, वाह, तुम्हारी तय्यारी और खुशी से तो मालूम होता है कि शादी शायद तुम्हारी ही हुई है।"

हाँ, एक बात और। विवाह के शुभ मुहुर्त पर माधवी ने, जो एक कोने में खड़ी उस मंगल कृत्य को देख रही थी, 'वाकिला'* ध्वनि की। लेकिन तीसरी बार दुहराते समय उसका कण्ठ गद्-गद् हो गया और ध्वनि बीच में ही रुक गई।

* * *

*विवाह आदि शुभ अवसरों पर केरल में स्त्रियां मुंह से एक प्रकार की मंगलध्वनि निकालती हैं। उसे 'वाकिला' कहते हैं।

सुकुमारन (यही उसका नाम था) की धर्म-माता भी स्वर्ग सिधार गई। सारी सम्पत्ति सुकुमारन के नाम छोड़ गई।

एक दिन एक राही ने देखा, एक भिखारिन एक नाम-पट (साइन बोर्ड) को हँसती हुई खड़ी-खड़ी ध्यान से देख रही थी। उस पर लिखा था,

सुकुमारन नायर, बी० ए०; बी० एल०;
ऐडवोकेट।

राही उस पट पर कोई खास बात नहीं पाकर भिखारिन पर मन ही मन हँसता हुआ चला गया।

* * *

एक दिन नायर अपनी गोद में बच्चे को लेकर खेलाते हुए पत्नी से बोले, "आज अगर माँ जीवित रहतीं तो कितना अच्छा होता!"

* * *

सुकुमारन नायर अब कोल्लम (क्विलोन) में मुँसिफ़ हैं। बीच-बीच में एक बूढ़ी उनके घर आने लगी। उसके आने का समय था सुकुमारन नायर के कचहरी चले जाने के बाद। देखने में साठ साल की लगती थी। उसका कपड़ा पुराना और थोड़ा फटा-चिटा होने पर भी साफ़-सुथरा था। कुरूप होने पर भी वह प्रसन्न दीखती थी। उस घर की दाई से बुढ़िया की मैत्री हो गई। उसके द्वारा उसे बच्चों से भी बातें करने का मौका मिलने लगा। एक दिन मालकिन ने उस बुढ़िया को बच्चों से बातें करते देख लिया।

मालकिन ने दाई को चेतावनी दी, "आज कल चोरी करने के लिये कई वेश में लोग घूमते फिरते हैं। कोई चीज़ उठाकर कपड़े में छिपाकर चल दे तो पता नहीं लगेगा। सुना न?"

उस बुढ़िया को बच्चे 'नानी, नानी' कहने लगे थे। वह जब आती बच्चों के साथ खेलती, गाना गाकर सुनाती, उनका फूल चुनकर देती और कहानियाँ सुना कर हँसाती। जब वह जाने लगती तब बच्चे कह उठते, "कल फिर आना।"

बुढ़िया ने मालकिन से बातें करते करते प्राचीन काल की बातें कहीं और पतिव्रता शीलावती की कहानी भी बड़ी तन्मयता से कथाकालक्षेप के ढंग पर सुनाई।

मालकिन जब उसे कुछ देने लगती तब वह लेने से इनकार कर देती। उसे इनकार करते देखकर बच्चे उसे चींटी काटते।

बुढ़िया सुकुमारन नायर के, बचपन से लेकर अब तक के जितने फोटो थे, सब छिप छिपकर, ध्यान से देखा करती थी। और जब कोई पास में नहीं रहता तब बच्चों को चूम भी लेती थी।

एक दिन एक बच्चे ने उसके दोनों कान अपने छोटे-छोटे हाथों से पकड़कर कहा, "नानी के कान ठीक पिताजी के कान की तरह हैं।"

बुढ़िया ने बच्चे की बात नहीं सुनी—ऐसा भाव दिखाते हुए, कान दर्द करने की बात कही और बच्चे के हाथ से छुड़ाकर उन्हें बालों से ढक दिया।

"नानी को तुम तंग कर रहे हो!" मां ने बच्चे को टोका।

अगले दिन बच्चों ने पिता से कहा, "आज नानी नहीं आयी।"

"रोज़-रोज़ मुफ्त में क्यों आयेगी? तुम लोग कुछ देते नहीं, इसलिये नहीं आती," पिता ने कहा।

"देने वाले तो आप ही हैं, आप ही को देना चाहिये," एक बच्चे ने कहा।

तीन दिन के बाद बुढ़िया आयी । उसने कहा, 'बीमार थी, इसलिये नहीं आती थी ।'

एक दिन बुढ़िया एक छोटा फोटो लेकर खड़ी-खड़ी निर्निमेष भाव से देख रही थी । उसी समय मालकिन के आने की आहट सुनकर घबड़ाकर उसे अपने कपड़े में छिपा लिया । मालकिन पास न आकर दरवाजे के पीछे छिपकर देखने लगी कि बुढ़िया क्या कर रही है । बुढ़िया ने फोटो निकालकर ठीक जगह पर टांग दिया ।

उसके बाद एक सप्ताह बीत गया । बुढ़िया का दर्शन नहीं हुआ ।

"पिता जी, नानी को आप कुछ नहीं देते; इसलिये अब वह नहीं आती," एक बच्चे ने शिकायत की ।

"अच्छा ही है, आने की जरूरत भी नहीं है," पत्नी ने कहा ।

"हूं, क्यों ?" पति ने पत्नी की तरफ उत्तर के लिये नजर फेरी ।

"आंख बचाकर न जाने कब क्या उठा ले जाए," कहते हुए पत्नी ने उसके फोटो उठाकर देखने और रखने की बात सुनायी ।

"ऐं ! कुछ लेना ही चाहती तो फोटो क्यों उठाती ? किसी कीमती चीज में ही हाथ लगाती । भला उस फोटो से उसको क्या मिलता ?" मुँसिफ ने कहा ।

"उस दिन मोहन ने उसका कान हिलाकर दुखा दिया । इस लिये नानी अब नहीं आती," एक लड़के ने कहा ।

"कान क्यों दुःखा दिया ?" सुकुमारन नायर ने पूछा ।

"उसके कान पिताजी के कान जैसे ही हैं कहकर उसने नानी के कान पकड़ लिए," लड़के ने जवाब दिया ।

"ऐं !" सुकुमारन नायर के मुँह से निकला। वे शोकाक्रान्त हो खड़े हो गये। वे बुढ़िया के बारे में प्रश्न पर प्रश्न करने लगे। पत्नी और बच्चों को जो कुछ मालूम था उन्होंने सब कह सुनाया।

वे चुपचाप बैठे सुनते रहे। थोड़ी देर तक चिन्ताग्रस्त हो बैठे रहने के बाद निस्तब्धता भंग करते हुए वे बोले, "हाँ, मुझे याद आ रहा है—मैंने देखा है·····मैं पहले भी देखा करता था·····एक हफ्ता पहले भी·····ओह ! मेरी माँ, मेरी माँ, वही मेरी माँ है·····"

उस बुढ़िया की खोज में कई आदमी निकल पड़े। लेकिन उसके बारे में परस्पर विरोधी बातें ही सुनने को मिलीं। फिर उसे किसी ने नहीं देखा।

ओणम[1] की भेंट

भारती कुट्टी ने अत्तम (हस्त नक्षत्र) के दिन प्रांगण में फूल सजाने के बाद यह कहते हुए हर्ष प्रकट किया कि ओणम तो नज़दीक आ गया।

रवीन्द्र ने उत्साह से कहा, "पिताजी ने इस बार मेरे लिये 'कसवु-मुण्डु'[2] खरीद देने का वचन दिया था।"

उन बच्चों की बातें सुनकर दुध-मुँही बच्ची ने भी अपनी भाषा में कुछ कहा और हँसती हुए माँ के वक्ष से चिपट गई।

"पोन्नुमणि[3] को न लुंगी चाहिये न कुर्ता। ओणम के दिन सिर्फ खीर चाहिये। क्यों, ठीक है न?" रामचन्द्रन ने कहा।

---

१. ओणम केरल का एक प्रधान त्योहार है जो भादों के महीने में तिरुवोनम (श्रावण) नक्षत्र के दिन मनाया जाता है ऐसा माना जाता है कि उस दिन राजा महाबलि जिन्हें भगवान् विष्णु ने उनकी सारी भूमि दान में पाकर पाताल भेज दिया था पर जिनका प्रजा-प्रेम देखकर वर्ष में एक बार आकर अपनी प्रजा को देख जाने की अनुमति दी, का आगमन होता है। उसके उपलक्ष में लोग अच्छी तरह खाते-खिलाते हैं और आश्रितों को वस्त्र भेंट करते हैं जिससे महाबलि उन्हें सुखी देखकर प्रसन्न होवें।

२. भेंट में दी जाने वाली जरी किनारे की महीन कपड़े की लुंगी। केरल में लुंगी पहनने का रिवाज है।

३. प्यार का नाम (अर्थ, स्वर्ण-मणि)

"पिता जी भी कैसे हैं ! ऐसे पिता हुआ करते हैं !! कितने दिन हुए घर से गये !" रवीन्द्र ने कहा।

"ओणम के लिये कपड़े आदि लाने के लिये ही गये हैं। अब फूल सजाना शुरु हो गया न ? हो सकता है, आज ही आ जायें ! क्यों माँ ?" भारती ने पूछा।

नाणी अम्मा (नारायणी अम्मा) की धसी आखें डबडबा गईं। उसने एक लम्बी सांस ली और बच्ची को वहीं रख कर अन्दर चली गई।

थोड़ी देर के बाद वह बाहर आकर बच्चों से बोली, "फूल-वूल मत सजाओ; मैंने मना किया है न ?"

"कपड़ा देना पड़ेगा, इसी से क्या ? हमें कपड़ा नहीं चाहिये," रामचन्द्रन ने कहा।

"क्यों मना करती हो, माँ ? ओणम के पहले फूल सजाते हैं न ?" भारती ने पूछा।

"जैसा कहती हूँ वैसा करो। बहस मत करो। यहाँ फूल सजाओगी तो ओणम के दिन चूल्हे में आग तक नहीं जलाऊँगी। सुना न ?" माँ ने रोष का भाव दिखाते हुए कहा।

"मैं फूल-वूल नहीं सजाऊँगा, माँ। लेकिन ओणम के दिन हमें भोज जरूर चाहिये। मुझे एक लुँगी भी चाहिये। दोगी न, माँ ?" रवीन्द्र ने माँ को खुश करने के विचार से कहा।

तब तक पान्नुमणि, जिसके गाल और पेट फूले हुए थे, खिसकती-खिसकती सजाये फूलों के पास चली गई और कुछ मुट्ठी में उठाकर मुँह में लगाने लगी। रवीन्द्र और भारती ताली बजा-बजाकर शोर मचाने लगे। रामचन्द्रन ने फूलों को पैर से कुचलकर हटा दिया और कहा, "इस घर में ओणम नहीं मनाया जायगा"।

* * *

पप्पु पिल्ला (पद्मनाभन पिल्ला) बटवारे के बाद अपने हिस्से का एक घर बेचकर उससे प्राप्त रकम से एक बिसाती की दुकान कर रहा था। उसकी शादी एक सम्पन्न कृषक परिवार की इकलौती पुत्री नारायणी से हो गई।

पप्पु पिल्ला अपने गांव वालों के बीच एक असाधारण व्यक्ति था। धर्म-सेवक, कांग्रेस-कार्यकर्ता, पत्र-सम्वाददाता, सहकार-समिति-मंत्री और वक्ता आदि के काम जो एक नवीन प्रगतिशील युवक पसन्द करता है, उनमें एक भी बाकी नहीं रहा जिसे पप्पु पिल्ला ने हाथ में नहीं लिया।

पप्पु पिल्ला राजधानी के कांग्रेस-कार्यालय में भी कुछ दिन रह चुका था। तिरुवितांकूर के आधे तालूकों में घूमकर दुनिया का अनुभव भी ले चुका था। उसके बारे में कभी किसी ने कोई शिकायत नहीं सुनी। विधि ने उसे नाणी अम्मा से जोड़ दिया।

नाणी अम्मा के बारे में इतना कहना पर्याप्त होगा कि अगर पिछली सदी की सुन्दरियों से उसकी तुलना की जाती तो वह जरूर अगली पंक्ति में अपना स्थान लेती। चौथे दर्जे की पढ़ाई खत्म होते ही वह चौके चूल्हे के काम में लग गई। स्त्री-सम्मेलनों में उसने कभी भाग नहीं लिया। स्त्री-स्वातंत्र्य के बारे में कभी सुना तक नहीं। लेकिन पति के साथ वन में जाने वाली सीता और पति को गोद में उठाकर वेश्या के घर पहुँचाने वाली शीलावती के प्रति उसके हृदय में बड़ी श्रद्धा-भक्ति का भाव था।

ससुर के मर जाने पर पप्पु पिल्ला मालिक बन गया। पड़ोस के लोग कहने लगे, "अब उस घर में जाकर देखना चाहिये। सब कुछ कितना परिष्कृत हो गया है।"

कुछ समय बीतने पर नाणी अम्मा ने पप्पु पिल्ला के भाग्य-मुकुट जैसे एक पुत्र को जन्म दिया। बच्चा पप्पु पिल्ला का ही प्रतिरूप था। नाणी अम्मा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

सोने की करधनी पहिने, लाल कौपीन* लगाये, लाड़ले बच्चे रामचन्द्रन के इधर-उधर दौड़कर खेलने का पुलकित करने वाला दृश्य देखकर खुश होने वाली, उसकी नानी (मातामही) भी स्वर्गवासिनी हो गयी मानो स्वर्ग में अपने पति को भी वह खुश-खबरी सुनाना चाहती थी।

घर में पप्पु पिल्ला का एकाधिपत्य हो गया। वह अपना ज्यादा समय सुख विलास में बिताने लगा। दूकानदारी का काम सम्भालने के लिये नौकर रख लिया गया। वह स्वेच्छाचारिता का जीवन बिताने लगने के साथ-साथ चापलूसों से भी घिर गया। खर्च बढ़ गया। दूकान बनाये रखने और कर्ज चुकाने के लिये उसे अपना दूसरा मकान भी बेच देना पड़ा।

घर में एक लड़की नहीं थी। उस अभाव की भी पूर्ति हो गयी। भारती का जन्म हुआ।

* * *

उधर, पप्पु पिल्ला की तृष्णाएं बढ़ती गयीं। वह एक भ्रमर के जैसा जीवन बिताने लगा। खिलने वाली कलियों और खिले हुए फूलों तक ही नहीं, मधुहीन पुराने म्लान मुख पुष्पों के इर्द-गिर्द भी वह मड़राने लगा।

ताड़ी खाने वालों से उसका एक नया बन्धुत्व स्थापित हो गया। उसके नये-नये साथी हो गये। नाणी अम्मा अपने पति के विचित्र बात-व्यवहार को देखती और आश्चर्य करती। पर असली बात से वह अनभिज्ञ ही रही।

एक दिन उसने पप्पु पिल्ला की बातों में आकर रजिस्ट्रार के दफ्तर में हाजिर हो एक रेहननामे पर दस्तखत कर दिया। उसके

---

* केरल में बच्चों को लाल कौपीन पहनाने का रवाज है। बच्चे नंगे नहीं रखे जाते।

बाद बरसाती हरियाली की तरह पप्पु पिल्ला की दूकान थोड़े समय के लिये लहलहा उठी। लेकिन बहुत दिन बीतने भी न पाये कि दूकान खाली हो गयी।

भोजन के बाद बैठे-बैठे एक दिन पप्पु पिल्ला ने पत्नी से कहा कि एक और दस्तावेज पर दस्तखत करना होगा।

घाटा ही घाटा है तो दूकान क्यों नहीं बन्द कर देते?—नारायणी अम्मा ने कहा।

तुम्हें क्या मालूम कि घाटा-लाभ क्या कहलाता है? सबी से जब वसूल हो जायेगा तब पूंजी बढ़कर चौगुनी हो जायेगी। लेकिन लोगों से बकाया वसूल करने के लिये दूकान चालू रखना जरूरी है। इसे तुम घाटा समझती हो?—पप्पु पिल्ला ने समझाते हुए कहा।

पहले तो नारायणी अम्मा की समझ में कुछ नहीं आया। फिर उसे सन्देह हुआ। उसने अनुमान से भी काम लिया। पप्पु पिल्ला अपने असली रंग में दिखाई देने लगा। नारायणी अम्मा डर गयी। पहले रूठी, रोयी, और अन्त में रो रोकर सब सहने लगी।

पप्पु पिल्ला ने पहले अपनी सारी करतूत छिपाने की कोशिश की। ताड़ी की बोतलों को दवा की बोतल कहकर दवा पीने का बहाना किया। कसम खाकर पत्नी को समझाया कि 'चुप रहो' क्या यह सब मुझे नहीं मालूम? तुम व्यर्थ ही इतनी डर गयी हो। और उसे निरुत्तर कर दिया।

* * *

अन्त में जिस घर में सब रहते थे उसको भी रेहन पर लिख देने को पप्पु पिल्ला ने उस बेचारी से कहा। उस समय रवीन्द्र उसका तीसरा बच्चा पेट में था।

नाणी अम्मा ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। पप्पु पिल्ला के नाराज़ हो जाने पर भी नाणी अम्मा अपने निश्चय पर डटी रही। पप्पु पिल्ला गालियां देने लगा।

नाणी अम्मा ने दृढ़ता से कहना शुरू किया—न, जो भी कहें, मैं नहीं आ सकती। खाने-पीने को कुछ नहीं रहे तो आदमी नौकरी मजदूरी करके पेट पाल सकता है, और नहीं तो भीख मांगकर भी ज्वाला शान्तकर सकता है। लेकिन रहने को घर ही न रहे तो क्या करेगा ?

अड़ोस-पड़ोस के लोग अहाते के घेरे के पास खड़े-खड़े झांक-झूंक कर देखने लगे।

उस पियक्कड़ का गुस्सा बढ़ा और सीमा पार कर गया। उसने उस गर्भिणी को खूब पीटा। उसकी दबी रूलाई और पप्पु पिल्ला के गर्जन की आवाज पड़ोस के लोगों के कानों में पड़ी।

नारायणी ने रोते हुए ही कहा—ज्यादा से ज्यादा मुझे मार डालेंगे। इतना ही न ? फिर भी मेरे बच्चों के लिये रहने की जगह तो बच जायेगी।

उसने क्रोधावेग में कहा—हां, तुम्हें मार ही डालूंगा।

पड़ोस के बच्चों में से एक ने कहा, "नाणी मौसी मर जायेगी तब दस्तावेज पर दस्तखत करने कौन जायेगा !"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद पप्पु पिल्ला घर से निकल गया। और उसके साथ वहां की भीड़ भी तितर बितर हो गयी।

अगले दिन बड़े लड़के, रामचन्द्रन ने दुकान पर जाकर पिता से कहा, "मां पूछ रही है कि दस्तावेज पर दस्तखत करने के लिये आलपुषा कब जाना होगा ?"

उस बार पप्पु पिल्ला ने रजिस्ट्रार को घर पर ही बुला लाने की उदारता दिखायी। रेहननामे पर नाणी अम्मा ने दस्तखत कर दिये। और उसके साथ पिछले दिन के झगड़े की कालिमा भी

मिट गयी। लेकिन व्यसनी पिल्ला का जो कुछ बचा खुचा था, सब बहुत दिन बीतने भी न पाये कि हवा में कपूर की तरह उड़ गया।

उसकी दूकान एक बार फिर जो बन्द हुई, फिर नहीं खुली। पप्पु पिल्ला की कुछ हरकतें अपने आप बन्द हो गयीं। लेकिन शराब की आदत नहीं छूट सकी। उल्टे वह बढ़ती गयी। चिन्ताएँ भुलाने के लिये शराब की शरण लेना अधिकाधिक आवश्यक होता गया।

'बकरी जहां लेटती है वहां उसका रोआं थोड़ा रह ही जाता है।' घर में गहने, बर्तन, लकड़ी के सामान आदि जो बच गये थे, एक एक करके वे भी उन भाग्यहीनों से विदा हो गये।

* * *

उस घर में सायंकाल का मंगल-दीप जलाना बन्द हो जाने के साथ-साथ दरिद्रय-देवता ने अपना वासस्थान बना लिया। गन्दगी बढ़ने के साथ-साथ मकड़े ने चूल्हे में भी अपना जाल बनाया। घर के छप्पर के चूने वाले हिस्सों ने झुककर जमीन पर घुटने टेक दिये। मानों मकान-मालिक से रूठ गये हों।

ऐसा लगता मानों पप्पु पिल्ला ने नाणी अम्मा को हाथ का सहारा देकर सुख की जगह से एक-एक सीढ़ी करके नीचे उतार दिया और विस्तृत मरुभूमि में ढकेल दिया है।

नाणी अम्मा ने सिर उठाकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। शून्य हस्त हो जाने पर जीवन की संग्राम भूमि में वह उसे ऊंचा नहीं रख सकी। सिर झुक गया।

कुछ ही दिन बाद धर्म-परिवर्तन की आंधी चली। पप्पु पिल्ला जैसे चालाक व्यक्ति ने सोचा, 'अच्छा मौका है। नाम भी होगा,

पैसा भी मिलेगा। सब इच्छायें पूरी हो जायेंगी और जीवन का आनन्द भी खुशी-खुशी लूट सकूंगा।'

किसी से कुछ कहे बिना वह एक दिन आलपुषा चला गया, और वहां से मावेलिकरा। वहां अपना धर्म बदलकर महम्मद अनसारी नाम स्वीकार कर लिया।

पिछले कुछ दिनों से वह पेट भरने के लिये इधर-उधर चक्कर काटता और पांच-पांच, छः छः दिन घर नहीं लौटता। नाणी अम्मा धीरे धीरे, उसकी लम्बी गैरहाजिरी की आदी हो गयी। इसलिये इस बार जब वह नहीं लौटा तब उसे कोई विशेष चिन्ता नहीं हुई।

पिल्ला के धर्म-परिवर्तन की बात फैलकर नाणी अम्मा के कान तक पहुंचते-पहुंचते कर्किटकम (आषाढ़-श्रावण) महीना बीत गया।

नाणी अम्मा को पति से नये वर्ष के मंगल-चिन्ह के रूप में यही खबर मिली। वह भी, अब चार बच्चों की मां हो जाने के बाद! उस पर मानों वज्रपात हो गया।

बच्चे जब पिता को खोजते तब माँ सिर्फ एक हुंकारी या किसी अन्य शब्द से जवाब दे देती।

जब सच्ची बात जानने के लिये लोग उसके पास आते तब कुछ नहीं जानने का ही भाव प्रकट करती।

कुछ लोगों ने कहा, "वह निरी बेवकूफ है।"

घर के सामने से जो नदी बहती थी उससे वह हमेशा बातें करती। नदी भी मानों उससे कुछ-कुछ कहती रहती। देखने वालों को लगता मानो दोनों के बीच किसी रहस्य के बारे में विचार विनिमय हो रहा है।

* * *

कुछ दिन बीत गये। अत्तम (हस्त नक्षत्र) का दिन आया। बच्चे आनन्द से ओणम का आह्वान करने लगे। वे बेचारे घर की स्थिति को क्या जानें ? पति का गृह-त्याग और धर्म-परिवर्तन ! जहां तक उस घर से सम्बन्ध था, वह उसकी मृत्यु के बराबर ही था।.....नाणी अम्मा ने निश्चय किया कि ओणम नहीं मनाऊंगी।

ओणम नहीं भी मनावे, तो भी बच्चों को एक दो भाजी के साथ भर पेट खाना खिला देने की उसकी इच्छा थी। थोड़ी खीर भी बना देना चाहती थी। बड़े पुत्र रामचन्द्रन के लिये एक मुण्डु भी मंगा सके, तो बस और क्या चाहिये !

पर उसके पास तो कुछ था नहीं। हां, बचाकर रखा हुआ चार सेर चावल था। एक घड़े में रखकर मुँह बांधकर उसे छत पर हिफाजत से रख छोड़ा था। घर में इसके रहते हुए भी बच्चे कई बार बिना कुछ खाये भूखे सो गये थे। पर नाणी अम्मा ने उसे खर्च नहीं किया। इसका कारण था ओणम के प्रति उसकी श्रद्धा, या महाबली का डर, या अपने बच्चों का ही डर।

नाणी अम्मा ने बेटे को पाट्टकारन (ठीके पर जमीन जोतने वाले) के पास भेजा। लड़के ने उससे दो रुपये मांगे या कम से कम एक देने को कहा। लेकिन पाट्टकारन कैसे देता ! वह तो एक साल की रकम पेशगी में पहले ही दे चुका था।

सब लोग ओणम के लिये तय्यारियाँ करने लगे। घर और अहाते की सफ़ाई करना, धान कूटकर चावल इकट्ठा करना, नारियल पेरवाकर तेल निकलवा कर रखना, ओणपुटवा[1] के लिये कपड़े लेकर रखना, आदि सब काम होने लगे। शाक-सब्जी

---

१. ओणम के अवसर पर भेंट में दी जाने वाली लुँगी को ओण-पुटवा (ओणम-वस्त्र) कहा जाता है।

भरी नौकाएँ नारायणी अम्मा के घर के सामने से आती-जाती दिखाई देने लगीं। दूर-दूर काम पर गये लोग भेंट-उपहार के नये-नये सामान लेकर छुट्टी में घर पहुँचने लगे।

भारती ने पूछा, "उप्पेरी[1] बनानी है न माँ?"

रवीन्द्र ने कहा, "दूकानों में सब तरह की तरकारियाँ आई हैं।"

नाणी अम्मा ने ओणम के पहले दिन दोपहर तक पड़ोस के घरों से उधार मांग-मांगकर बारह आने इकट्ठे किये थे। थोड़ी देर के बाद पाट्टक्कारन ने एक रुपया भेज दिया। उसे चाहे पाट्टम (ठीके की देन) कहा जाय, चाहे चन्दा या दान!

नाणी अम्मा ने सामानों की एक सूची बनाकर रामचन्द्रन को दी। चावल और पापड़ छोड़कर बाकी सब चीजें—'नमक से लेकर कपूर तक'—खरीद कर लानी थीं। बच्चों के लिये काँच की चूड़ियाँ थीं। सब मिलाकर सवा रुपये का सामान लाना था। बच्चे खुशी के मारे कूदने लगे।

रामचन्द्रन के मुँह से एक गाना निकला—

दारिद्र्य दुःख से बढ़ कर
दुनिया में कोई दुःख नहीं।

नाणी अम्मा भीतर ही भीतर बहुत खुश थी।

सबों का काम खत्म हो जाने के बाद रामचन्द्रन को बाजार जाने के लिये एक छोटी नौका मिली। सायंकाल की बत्ती जो बिना तेल के ही जला दी गई थी, जब बुझने बुझने हो रही थी तब वह घर से नाव पर चढ़कर बाजार की तरफ़ चला।

---

१. बनाने (एक विशेष जाति के केले) को छोटे-छोटे टुकड़ों या कतरन के रूप में काटकर उसे नारियल के तेल में नमक डालकर तल देते हैं।

पम्पा नदी, जो दोनों तटों पर प्रकट होने वाले आनन्दोल्लास की ओर ध्यान न देती हुई तीव्र गति से बह रही थी, के वक्ष को चीरती हुई उसकी नाव तेजी से आगे बढ़ी। उसे एक मील दूर के बाजार से सब सामान लाना था। भीड़ के बीच दुकानों से सब सामान खरीदकर जब वह बालक नाव पर चढ़ा तब रात्रि का एक प्रहर समाप्त हो चुका था।

कल करेंगे दर्शन कल मिलेंगे भगवान से
कहते कहते रह गये हम निकल न सके धाम से।

गुनगुनाते हुए उस ग्यारह साल के लड़के ने ओणम की भेंट लेकर चम्पकुलम* जाने वाली नौकाओं के खवैयों को भी शर्माने वाली फुर्ती से अपनी नाव खेना शुरू किया। अपने भाई-बहन के लिये ओणपटुवा लेकर पम्पा नदी की गति से भी (जो अपने पति—सागर—के पास ओणम की भेंट लेकर दौड़ी चली जा रही थी) तेज़ गति से वह घर की तरफ़ चला।

चाँद ने पीछे से मन्दहास की छटा छिटका दी। दोनों तटों पर नारियल के पेड़ सिर हिलाने लगे मानों रामचन्द्रन को उसकी कुशलता पर बधाइयाँ दे रहे हों। उधर ऐसा लगने लगा मानों पवन को इस बालक की तेजी और प्रसन्नता से ईर्ष्या हो गई हो। उसके हृदय के समान स्वच्छ आकाश में, काले बादल, छूट पाये हुए यमदूतों की तरह छा गये। आंधी-पानी एक साथ शुरू हो गया। लेकिन बच्चा निश्शंक भाव से आगे बढ़ता गया।

नाणी अम्मा नदी के किनारे जाकर ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगी, "रामचन्द्र ! बेटा !! रामचन्द्र !!!" .....

"हाय ! मेरा बच्चा कहाँ है ?" मानों माँ हवा से ही पूछने

---

*एक स्थान का नाम जहाँ बड़ा बाजार लगता है। यह एक मेले के लिए भी प्रसिद्ध है।

लगी। जवाब में सिर्फ बिजली चमकी और मेघ गरजा मानों माँ का दुर्भाग्य व्यंग से अट्टहास कर रहा हो।

कान में जरा भी कोई आवाज पड़ती कि माँ चिल्ला उठती, "कौन ? बेटा ? रामचन्द्र !"

* * *

अगले दिन सवेरे नदी किनारे पड़ी हुई माँ को पम्पा नदी ने ओणम की जो भेंट दी वह थी वह खाली नौका जिसमें बैठ कर पिछली शाम को उसके हृदय का टुकड़ा, उसके जीवन का प्रकाश, उसका प्राणों से प्यारा पुत्र सामान खरीदने गया था।

पता

जिस दिन वह सब से पहले देखने को मिल जाती उस दिन मुझे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। देर से उठने की मेरी आदत थी। उठकर खिड़की के बाहर देखने पर वह बालिका ही नियम पूर्वक हाथ में एक फूल लिये मेरी प्रतीक्षा में खड़ी दिखाई देती थी। जब मैं उस के कन्धे तक बेतर्तीब लटकते काले, घुंघराले बाल, गोरे, गुलाबी सुन्दर कपोल, काली धनुपाकार भौहें और उनके नीचे चमकने वाली आंखें देखता तब मुझे मानो एक नवजीवन ही प्राप्त हो जाता। मेरा पहला काम अपने अहाते से उसको फूल चुन कर देना होता था। कभी फूल न रहे तो एक चित्र या बाल बांधने का एक फीता ही, और कभी वह भी न रहे तो खुशी की बातें ही मैं उसे भेंट किया करता। जो भी मिलता उससे वह सन्तुष्ट हो जाती।

शारदा—यही उस लड़की का नाम था—चार भाइयों के बीच एक बहन थी। मां को उसी से थोड़ी बहुत सहायता मिलती थी। बाप के ऊपर परिवार के आठ व्यक्तियों के भरण-पोषण का भार था। वे बहुत कम तनख्वाह पाते थे। घर में खाने-पीने की थोड़ी तकलीफ रहती ही होगी। फिर भी शारदा का प्रसन्न मुख इसका प्रमाण देता था कि वह बिना किसी कष्ट के पल रही थी।

उसका पद्य दुहराना और कण्ठस्थ करना सुन कर मैं अन्य बातें भूल जाता था और उसके माधुर्य में तल्लीन हो मन में सोचता, 'काश, शारदा जैसी मेरी एक छोटी बेटी होती!'

वह लड़की मेरी कौन थी? कोई नहीं। हम एक गांव के नहीं थे। उसके घर के किसी और व्यक्ति से मैंने बात तक नहीं

की थी। मैं जिस मकान में किराये पर रहता था उसी से सटे एक मकान में वे भी किराये पर रहते थे। हम दोनों दो जगह से आये थे। दो जगह रहते और दो अलग अलग जगह चले जाने वाले थे। हमारे बीच कोई सम्बन्ध नहीं था।

फिर भी शारदा और मेरे बीच तो कोई आत्मिक सम्बंन्ध जरूर था। शायद पूर्व जन्म का ही सम्बन्ध रहा हो!

सुबह के नौ-दस बजे से लेकर सन्ध्या तक मैं घर पर नहीं रहता। इसलिए उसे देखने को ज्यादा समय मुझे नहीं मिलता। उस से मिलने पर कहने के लिये कोई खास बात भी नहीं होती। तो भी वह हमेशा मेरे मन में बसी रहती थी।

अनेक बार उस बच्ची के बारे में कोई कविता लिखने का मेरा मन हुआ। पर मैं कवि तो था नहीं। कहानी लिखने की इच्छा हुई, लेकिन कहानीकार भी नहीं था। जी चाहता, उसका एक चित्र उतारूं पर वह भी नहीं कर सकता था। तो भी वह मेरे लिये एक कविता थी, एक कहानी थी। सवेरे फूलों के साथ मेरी प्रतीक्षा में खड़ी रहने वाली उस सुन्दर बालिका का चित्र मेरे हृदय पटल पर अंकित हो गया था।

उसको देखते हुए कई बार उस कुटुम्ब की कुछ सहायता करने की मेरी इच्छा हुई थी। परन्तु मैं स्वयं कितना तुच्छ था! मैं भगवान से प्रार्थना करता कि वे शारदा को सुखी रखे। इस से ज्यादा मैं कर ही क्या सकता था?

पास में रहते रहते पांच छः महीने हो गये। एक दिन उसने मुझ से कहा,

"मामा, हम लोग आज जा रहे हैं।"

"कहां, शारदा?"

"आलवाय* ।"

---

* ट्रावनकोर रियासत का एक शहर।

"क्यों ?"

"पिता जी की बदली हो गयी है।"

"वहां जाकर अपने मामा को पत्र लिखना।"

"उस के लिये लिफाफा चाहिये न ?"

"मैं दूंगा।"

"पत्र में क्या लिखूंगी ?"

"लिखना, सुख से हूँ।"

"मामा सुख से हैं, यह मैं क्यों लिखूंगी ?"

"नहीं जी, अपने बारे में लिखना, मेरे बारे में नहीं।"

"ऐसा क्यों लिखना चाहिये ?"

"तुम सुख से हो यह मैं जानना चाहता हूँ।"

"मैं सुख से हूँ, यह आप जानते ही हैं।"

"हां, अभी सुख से हो, यह तो जानता हूँ। लेकिन आदमी हमेशा सुखी नहीं रहता है। शारदा के सुख में कोई कमी नहीं हुई, यह जान कर मुझे आनन्द होगा।

"पत्र भेजने के लिये पता भी चाहिये न ?"

"मैं लिख दूंगा।"

मैंने टिकट वाला एक लिफाफा लेकर पता लिख दिया। उसने बिना ज्यादा कठिनाई के पढ़ लिया, 'पुरुषोत्तमन पिल्लै'.....और कहा," मामा का नाम पुरुषोत्तमन पिल्ला है ?"

"हां।"

"इसे हिफाजत से रखना चाहिये," कह कर वह लिफाफा लिये चली गयी थी। मेरे दफ्तर जाने के समय तक वह फिर नहीं आयी। पता नहीं, मेरे जाने के बाद आयी थी या नहीं।

और रोज से पहले ही मैं दफ्तर से लौटा। लेकिन शारदा का घर सूना दीख पड़ा। बहुत देर तक मैं उधर ताकता रहा—

उत्साह खोकर, उदास होकर।

शारदा से थोड़ी बातें और कर लेता ? उसे भेंट में मैंने कुछ दिया क्यों नहीं ? उसके पिता से परिचय क्यों नहीं प्राप्त किया ? उन लोगों का नया पता क्यों नहीं पूछ लिया ? ऐसे कई प्रश्न, जिनके बारे में अब कुछ नहीं हो सकता था, मेरे मन में बार-बार उठने लगे।

दूसरे दिन सवेरे कुत्ते का भौंकना सुन कर मैं उठा। रोज़ की तरह शारदा को देखने की इच्छा से खिड़की के बाहर जब झांका तब शारदा की जगह एक मरीज़ अस्थिचर्म मात्र कुत्ते को एक बलिष्ठ गुस्सैल कुत्ते के आगे अपनी पूँछ सटकाये ज़मीन से चिपटे और आगे के दोनों हाथ जोड़ कर धड़कते दिल से रुदन की दीन आवाज़ निकालते देखा, मानो दया की याचना कर रहा हो।

उस दिन दफ्तर में एक दस्तावेज़ की नकल करते समय जहाँ कृष्ण पिल्ला' लिखना था वहाँ मैं ने 'शारदा' लिख दिया। यह भूल, नकल मिलाने वाले एक गुमाश्ता ने पकड़ी।

उसके दूसरे दिन सवेरे फूल तोड़ लेने के बाद ही मुझे शारदा के चले जाने की बात याद आई। ऐसी ही कितनी ही बातें हुईं।

धीरे धीरे मन की अशान्ति कम हो गई। दुःख मिट गया। फिर मन में उत्साह आ गया। काल के पर्दे के भीतर शारदा की याद भी मेरे मन से उतर गई। उस लड़की ने मेरे पास पत्र नहीं भेजा, यह बात भी मुझे याद नहीं रही।

* * *

मेरी शादी हो गई। बाल बच्चे हो गये। जीवन कौटुम्बिक जिम्मेवारियों का जीवन हो गया। यहाँ से वहाँ, मेरा स्थान-

परिवर्तन भी होता रहा। आखिर मैं कोटयम्[1] पहुँचा। शहर के एक कोने में किराये के एक छोटे मकान में अपने परिवार के साथ रहने लगा।

उस घर की बगल के एक घर में एक शोर-गुल वाला परिवार रहता था। वहाँ से निकलने वाली डांट-फटकार, मारपीट और रोने-धोने की आवाज से पड़ोस का वातावरण हरदम अशान्त रहता था। मुझे लगा कि उस मुहल्ले में घर लेकर मैंने गलती की।

दफतर से लौटने पर अपनी पत्नी से पहली बात जो सुनता वह उस परिवार के बारे में होती थी। 'आज पति ने गरम कम्मी[2] पत्नी के मुँह पर फेंक दी, तो आज जलावन का टुकड़ा उठा कर फेंका लेकिन निशाना चूक जाने से वह बच गई, आज शीशा उठा कर फेंका जो फूट गया और टुकड़ा उड़ कर लग जाने से बेचारी की ठुड्डी कट गई, ऐसी ही क्रूरता का वर्णन वह सुनाया करती थी।

मैं कभी कभी कह देता, औरतों पर इसी तरह शासन किया जाना चाहिये।

उस घर वाले प्रायः देर करके सोने जाते थे। झगड़ा ठण्डा होने में कभी-कभी काफी समय लग जाता था।

वहाँ रहते हमें करीब एक महीना हो गया। एक दिन एक नौजवान हमारे घर के सामने से जा रहा था। मेरी पत्नी ने कहा,

"देखिये, वही उस घर का आदमी है।"

मैंने एक तरह के तिरस्कार-भाव से उसकी ओर देखा। पर गौर से देखने पर वह तिरस्कार का पात्र नहीं मालूम हुआ। देखने में वह अठाईस साल का था, खूब स्वस्थ और सुघड़।

"क्या काम करता है?" मैंने पूछा।

---

१. ट्रावनकोर का एक शहर।

२. कम्मी=थोड़ा भात मिला पानीदार माड़।

"हस्पताल में चपरासी है।"

"गरीबी के कारण झगड़ा होता होगा।"

"पैसे की तो इतनी तकलीफ नहीं मालूम होती। वेतन के अलावा ऊपर से भी आमदनी होती है। कुछ धान, नारियल आदि भी आ जाता है।"

"तब वह स्त्री ही खराब होगी।"

"राम, राम, वह बेचारी इतनी भोली भाली है कि क्या कहूँ? इतनी दुबली कि इधर से उठ कर उधर बैठने की भी उसमें ताकत नहीं है। इतनी शान्त मानो मुँह में जीभ ही नहीं। उसका एक शब्द भी कभी सुना है?"

"तब इस मारपीट का क्या कारण हो सकता है?"

"क्या जानें? वह तो कुछ कहती ही नहीं।"

"पति शायद पीता होगा।"

"हो सकता है। वह पति के खिलाफ एक शब्द भी मुँह से नहीं निकालती।"

"जाने दो। हमें इन सब बातों से क्या मतलब? अगर ज्यादा अशान्ति मालूम होगी तो कहीं और जाकर रहेंगे। और क्या?"

फिर भी मैंने एक और सवाल पूछा,

"उस घर में कौन-कौन हैं?"

"पति, पत्नी और तीन बच्चे।"

"शायद घर में एक दूसरी स्त्री भी है।"

"न।"

"करीब तीस पैंतीस साल की होगी। पतली, दुबली, निर्जीव सी।"

"वही तो उस नौजवान की पत्नी है। इतनी ज्यादा उम्र को भी नहीं है। बीस साल ही उसकी उम्र है। ऐसा उसने कहा है।

मालूम नहीं पति से उम्र कम दिखाने के ख्याल से कहा हो। लेकिन देखने में खराब नहीं है।"

"उसके मां बाप हैं न ? उनके पास जाकर क्यों नहीं रहती ?"

"वे तोट्टुपुका* में रहते हैं। पिता देवस्वम (मन्दिर-विभाग) में काम करता है।"

"देवस्वम में ? उम्र बीस साल ? नाम क्या है ?"

इतना पूछ बैठने पर मुझे लगा कि मेरे सवाल ज़रा अनावश्यक थे।

पत्नी ने कहा,

"नाम क्या है ? मां बाप कौन है ? पति को छोड़कर मां बाप के साथ क्यों नहीं रहती ? देखने में कैसी है ? उम्र क्या है ? ये सब क्यों जानना चाहते हैं ? क्या इधर बुलाकर रखने का विचार है ?"

उसे चिढ़ाने के विचार से मैंने कहा,

"सोचा, तुम्हें उस आदमी को दे दूं और उसे ले लूं।"

"ओः हो ! तो पहले ही दिन वह सीख जायगा।" डींग मारती हुई वह हंस पड़ी।

देवस्वम में काम करने वाले की बेटी—बीस साल उम्र—दस और दस—मैं एक चिन्ता में डूबा बैठा रहा। ऐसा लगा कि पत्नी ने कुछ कहा। मैंने पूछा,

"क्या कहा ?"

"'जी, अपने पुरुषत्व पिल्ला के साथ जाकर रह,' कहकर उस आदमी ने उस बेचारी के गले में हाथ लगाकर उसे ऐसा ढकेल दिया कि वह पीठ के बल गिर पड़ी। इसमें कोई रहस्य जरूर है," पत्नी ने सुनाया।

---

* तोट्टुपुका = ट्रावनकोर का एक शहर।

"क्या रहस्य है ?"

"कौन जाने? शायद किसी का पता उसके बकसे में मिला है।"

"उसका नाम क्या है ?"

"मैं उसे इधर बुला दूं ?·····नहीं तो उधर ही जाने से सब बातें मालूम हो जांयगी। इस समय घर में अकेली ही होगी।"

"मैं सचमुच जानने के ख्याल से पूछता हूँ। देवस्वम में काम करने वाले एक आदमी की लड़की को दस साल पहले मैं जानता था। उन दिनों वह करीब दस साल की रही होगी। उसका नाम–

"शारदा" हम दोनों के मुँह से एक साथ निकला।

"यह वही शारदा न हो, मैंने अपनी अभिलाषा प्रकट की।

"वही होगी, "मेरी पत्नी ने कहा।

"लेकिन जिसे मैंने एक बार देखा है, यह तो वह शारदा नहीं है। जिस शारदा के बारे में मैं कहता हूँ, उसे देखोगी तो— कहकर मैंने अपनी पत्नी को अपनी पुरानी स्मृति जागृत करके, शारदा का वर्णन सुना दिया। और अपनी इच्छा एक बार और प्रकट कर दी कि वह कहीं वही शारदा न हो।

मेरी प्रियतमा के ईर्ष्याकुलुषित मुख पर एक दूसरी ही इच्छा की छाया दिखाई पड़ी।

उस दिन शाम को मेरी पत्नी ने कहा,

"हां, वही लड़की है। बेचारी की एक आँख चोट लगने से सूज गई है।"

यह सुनकर मैं अवाक् रह गया। अपने को भूलकर थोड़ी देर बैठा रहा। तब पूछा,—

"क्या उसने मुझे पहचान लिया है ?"

"मालूम तो नहीं होता।"

दूसरे दिन उस चपरासी को, अस्पताल जाते समय रास्ते पर रोककर मैंने कहा,—

"मेरी पीठ में दर्द होता है। आपके पास कोई दवा है ?"

"शाम को मिलें तो काफी होगा ?"

"अच्छा शाम ही को दीजिये।"

शाम को उसने तारपीन का तेल लाकर पीठ पर खूब मालिश कर दी। हम थोड़ी देर बैठे-बैठे बातें करते रहे। मुझे वह आदमी अच्छे स्वभाव का मालूम हुआ। पाँच छः दिन के भीतर हम में खूब घनिष्टता हो गई। मेरी शारदा से क्रूर व्यवहार करने वाले के साथ मेरे मन में स्वभावतः प्रतिकार का ही भाव उठना चाहिये था। मन के एक कोने में वह था भी। लेकिन मैंने निश्चय किया कि अपनी शारदा के पति के ऊपर मेरे मन में वात्सल्य का ही भाव होना चाहिये। ऊपरी वात्सल्य दिखाना मैंने शुरू भी कर दिया। हम आपस में अपने-अपने घर की बातें करने लगे। एक दिन की बीती हुई बातों के सिलसिले में मैंने कहा,—

"दस साल पहले मेरे घर के बगल में एक बच्ची रहती थी। दस साल की रही होगी।" इस तरह शुरू करके मैं कहता गया और वह 'हूँ, हूँ' कहकर सुनता रहा। धीरे-धीरे उसकी मन्द मुस्कान गहरी चिन्ता में परिणत होती गई और उसकी उत्सुकता बढ़ती गई। मैंने कह दिया कि कैसे मैंने उसे पत्र लिखने के लिये अपना पता लिखकर दिया था, तब उसकी आँखें सजल हो गईं। और जब उसे मालूम हो गया कि मेरा नाम पुरुषोत्तमन पिल्ला है, तब आँखें पोंछकर रुँधे कण्ठ से वह बोला,

"तो आप ही का नाम पुरुषोत्तमन पिल्ला है ?"

* * *

इसके बाद एक दिन जरा उदासी के भाव से मेरी पत्नी ने कहा,

"पता नहीं क्या हो गया! पाँच छः दिन से उस घर से किसी तरह का शोर-गुल नहीं सुनाई पड़ता।

छोटी बहन

शत्रु के कैदखाने की सब तकलीफों के बीच भी वह कभी-कभी बैठे-बैठे मुस्करा देता। खुराक की कमी और कड़ी मेहनत के कारण मुर्झा कर काले पड़ गये उस युवक के चहरे पर बिजली की कौंध सी एक ज्योति चमककर मिट जाती। वह सोचता, उसकी आह श्वास समुद्र के उस पार उसकी छोटी मीनू के पास पहुँच जायगी।

सिंगापुर को शत्रुओं के हाथ से छुड़ा लिया गया। जयरामन वहां के साढ़े तीन साल के नारकीय जीवन से मुक्ति पाकर घर लौटने के लिये जहाज पर चढ़ गया। उसका मन घर पहुँचकर उसकी छोटी बहन के चारों ओर मंडराने लगा। उसी के लिये जयरामन रंगरूटों के दल में भर्ती होकर उससे दूर, बहुत दूर चला गया था। जिससे कि उसकी मीनू को भूखों रहना न पड़े।

वह और मीनू, अपनी मां के दो ही बच्चे थे।

भय्या के सेना में भर्ती हो जाने की बात जानकर मुमकिन है, मीनू जोर-जोर से रोयी हो। पांच सालकी उस नन्ही बच्ची को क्या मालूम था कि भय्या के जाने से क्या-क्या फायदे होंगे!

पांच साल पहले उसने मिलटरी लॉरी में बैठे-बैठे उस आनन्द भरी आंखों वाली प्रसन्न वदना छोटी बहन को एक छोटा झोला लटकाये देखा था। फीते से दो लटों में बंधे उसके चिकने बालों में गुलाब के फूल गुंथे थे और उसके छोटे हाथों में कांच की चूड़ियां थीं। अब जहाज पर बैठे-बैठे उस सुन्दर दृश्य को वह अपनी स्मृति की आंखों से फिर देखने लगा। अब दिलमें विछोह की पीड़ा नहीं थी, अब थी मिलने की प्रबल उत्कण्ठा।

मद्रास पहुँचते ही उसका मन जल्द से जल्द घर पहुँच जाने के लिये उतावला होने लगा। अफसरों से उसे जो तीस रुपये मिले थे उससे छोटी मीनू केलिये एक फ्रौक लेने की उसे प्रेरणा हुई। पन्द्रह रुपये देकर सबसे सुन्दर दीखने वाला नीले रंग का उसने एक फ्रॉक खरीदा। वह चाहता था कि मीनू उसे देखकर एकदम चकित हो जाये। ऐसे परिष्कृत फैशन का फ्रॉक उसने देखा ही न होगा और न इतने बढ़िया कपड़े की उसे कल्पना ही होगी।

जापानी आक्रमणकारियों की क्रूरता का शिकार होने के बाद रिहाई के आनन्द में भरे जयरामन जैसे कुछ और भी युवक उस गाड़ी में थे। वे अपनी आजादी की खुशी मना रहे थे। उनके दिलों की धड़कन के साथ झक-झक करती और सीटी बजाती गाड़ी स्टेशन पहुंच गयी। जयरामन स्टेशन से बस से अपने घर के फाटक पर पहुंचते ही नीचे कूदकर घर के भीतर दौड़ गया। और पांच साल से पुत्र से अलग होकर उसीके ध्यान में दिन काटने वाली मां के सामने जा खड़ा हुआ। पुत्र विरह के दुःख से तप्त हृदय माँ एक क्षण के लिये स्तम्भित हो गयी। फिर बेटे को गले से लगा लिया।

बेटे के शरीर की हड्डी गड़ने से उसे जरूर दर्द हुआ होगा!

"माँ, मीनू स्कूल में है?" अपनी पोटली में रखे फ्रॉक की बात सोचते हुए जयरामन ने पूछा।

कई सालों के बाद आये अपने पुत्र को गले लगाये खड़ी-खड़ी माँ सिसक-सिसक कर रो रही थी, "मेरा बच्चा, मेरा बेटा,"।

जयरामन को बस से उतरते देखकर पड़ोस की एक स्त्री वहां आयी। उसने कहा,

"अरी, लड़का आया है तो उसे कुछ खिलाने-पिलाने के बदले तुम रो रही हो? दस दिन वह यहां रहेगा तो उसका स्वास्थ्य

सुधर जायगा। माँ के हाथ का खाना खाकर ही बच्चे तन्दुरुस्त रहते हैं।"

जयरामन की आंखों से आंसू बह रहे थे। माँ और बेटा दोनों चुप थे।

"बेटा घर छोड़कर तेरे चले जाने के बाद मेरा भाग्य ही फूट गया।"

"क्या हुआ ?" यह पूछने की जयरामन की हिम्मत नहीं हुई।

पड़ोसिन विषाद भाव से खड़ी थी।

माँ चौके में चली गयी।

"नाणी* मौसी, क्या कोई खास खबर है ?" जयरामन ने पूछा।

"क्या कहूँ बेटा ? सारी ही खास खबरें हैं।" कहकर नाणी मौसी ने खास खबरें सुनानी शुरू कीं,

"बेटा घर ही सूना हो गया। परसाल, हां, चैत्र के महीने में बीस पचीस दिन तक गौरी सोयी ही नहीं। घर में था ही कौन जिसका सहारा पाकर वह थोड़ा आराम करती ! यूं भी माँ को नींद कैसे आ सकती थी ? मेरा परम (परमेश्वरन) भी यहीं रहता था। बैठो बेटा, खड़े क्यों हो ?"

जयरामन को बैठने का नहीं, लेटने का, गिरने का ही मन करता था। वह ओसारे के चबूतरे पर बैठकर आतुरता से मौसी की ओर देखने लगा।

"अरी, चाय लाने जाकर चौके में क्या कर रही हो ?" पूछती हुई नाणी मौसी चौके की ओर गयीं।

जयरामन ने ऊपर, नीचे, दायें, बायें चारों तरफ नज़र

---

* नाणी = नारायणी।

दौड़ाई। बहुत पहले देखे उस मकान को, वहां बैठे-बैठे फिर से निहारा। पुरानी दीवारों पर सरिया से खींची लम्बी-लम्बी लकीरों पर उसकी नजर दौड़ गयी। इधर उधर जहां-जहां 'मीनू' लिखा दिखाई पड़ता वहां-वहां उसकी दृष्टि अटक जाती। छप्पर के एक कोने में मीनू की स्लेट अब उसे देखकर रो रही हो। मीनू का लकड़ी का गुड्डा भी एक तरफ पड़ा मानो रो रहा था। मीनू कैसे उस गुड्डे को कपड़ा पहनाकर, टीका लगाये, गोद में लेकर खिलाया करती थी, कैसे गोद में लिटा कर उसे खिलाने, उसे 'बुखार हुआ है' कहकर दवा पिलाने, और कहानियां सुनाकर सुलाने की नकल किया करती थी। ये सब बातें जयरामन के मानस चक्षुओं के सामने आ गयीं। उसे वह भी दृश्य याद आया कि मंदिर के उत्सव के अवसर पर एक दिन मां ने उसे किताब खरीदने के लिये पैसा दिया था, लेकिन उसने मीनू के लिये गुड़िया खरीदने में खर्च कर दिया। इस पर माँ ने हंसते हुए उसे झिड़का था और मीनू ठठाकर हंसती हुई खुशी से नाचने लगी थी।

वह उठकर गुड्डे की तरफ दो कदम आगे बढ़ा।

इतने में माँ ने वहां आकर कहा, "बैठो बेटा, थोड़ी कौफी पी लो, मेरे लाल।"

वह उदासीनता के साथ मां की बात मानकर चबूतरे पर फिर बैठ गया।

गौरी अम्मा ने नाणी अम्मा के बैठने के लिये एक पाटा रखा और उनके सामने पान का डब्बा जिसमें ज़ंग लग गया था रखते हुए कहा,

"पान खाओ, दीदी।"

पान खाते गौरी अम्मा ने पूछा,

"बेटा, किस दिन वहां से निकले थे ? इतने दुबले क्यों हो गये हो ?"

जयरामन ने जवाब दिया, "पांच तारीख को निकला था।"

बातें बाद को होंगी। इसके लिये बहुत समय मिलेगा। इसे नहा-खा-पीकर पहले थोड़ा आराम करने दो। बेचारे को कितने दिन से आराम करने और सोने को नहीं मिला होगा।

जयरामन चुप रहा। उसके चेहरे से प्रकट हो रहा था कि वह कुछ पूछना चाहता है। पर कैसे पूछे ?

"नाणी दादी, छटांक भर मट्ठा होगा तुम्हारे पास ?" गौरी अम्मा ने पूछा।

"हाँ, है, दूँगी," कहती हुई जयरामन को एक सांस में दसों खबरें उसने सुना दीं—उसकी गाय दिन-दिन सूखती जा रही है। पुआल भी बहुत महंगा हो गया है। आजकल दूध दुहते-दुहते उसके हाथ दुखने लगते हैं। ·····उसने एक गाय देखी थी जो पूरे दो सेर दूध देती थी। वह उस दिन बछड़े के साथ हाट में जा रही थी। ·····आदि आदि।

"पखेट्टी मम्मन के पास एक गाय थी। उसी से बेचारे का गुजारा चलता था। आज सवेरे देखा गया कि गाय खूँटे के पास मरी पड़ी है। उसका पेट फूलकर पहाड़ हो गया था। 'परचामुण्डी' (एक प्रेत) ने ही मार डाला होगा।"

गौरी अम्मा ने, जो चुपचाप सुन रही थी, पूछा,

"दुधार थी क्या ?"

"हाँ, पिछले दिन शाम को भी दूध दिया था। बछिया दिये दो ही महीने हुए। बछिया भी कितनी सुन्दर ! यदि बछिया बच जाय तो कुछ तसल्ली होगी। पर दो महीने की बछिया कैसे बचाई जा सकती है ? बेचारे की यही एक गाय थी।"

"गरीबों का ही न, जो भी हो, भगवान् छीन लेते हैं ?"

कहती हुई गौरी अम्मा ने एक लंबी सांस ली। उनकी आंखों से टपटप दो बूँद आंसू गिर पड़े।

जयरामन मौन बैठा था। मीनू के बारे में जानने के लिये वह भीतर ही भीतर छटपटा रहा था।

हमारे वश की बात नहीं थी, गौरी! हम लोगों ने कितनी कोशिश की, कितने कष्ट उठाये, कितना खर्च किया! सब करने पर भी सिर्फ आंसू ही पीकर रह जाना पड़ा।" नाणी अम्मा ने कहा।

"नाणी दीदी तो आधी रात के बाद ही यहाँ से जाती थीं और परसूट वह तो यहीं कोठरी के एक कोने में ऐसे ही बैठा रहता था। बैठे-बैठे कभी आंखें लग गईं तो लग गईं। गौरी अम्मा ने कहा।"

नाणी अम्मा ने कहा, "बेसहारों का सहारा भगवान् ही है।"

"अब सोचने पर मुझे आश्चर्य लगता है कि वह महीना कैसे कट गया। दवा भी, जो डाक्टर लिख देता था, नहीं मिलती अगर मिलती भी तो बड़ी महंगी! छाती पर लगाने का पोल्टिस के ही चार-पाँच टिन, छः-छः सात-सात रुपये देकर खरीदे गये थे।" गौरी अम्मा ने कहा।

"एक बार गोविन्द के लिये वह खरीदा था। उस समय उसके लिये पौने दो या दो रुपया ही देना पड़ा था। लेकिन यह लड़ाई के पहले की बात है।" नाणी अम्मा ने कहा।

गौरी अम्मा ने कहा, "एक और चीज़ भी थी—लूकोस (ग्लूकोस)। मुझे तो इन चीजों का नाम कहना भी नहीं आता। सबका परमू ही इन्तजाम किया करता था। आलपुका और एरणाकुलम आदि जगहों से आदमी भेजकर मंगवाना पड़ा था।"

"इस तरह क्या-क्या न किया गया। एक अधन्नी में जो

साबूदाना पाव भर मिलता था, सो दो-दो रुपये देकर खरीदा गया था।" नाणी अम्मा ने कहा।

मुझे तो कुछ भी याद नहीं है। इसके यहाँ से जाने के बाद मैं होश में कहाँ थी! बम और गोलाबारी के बीच में पड़े-पड़े वहाँ से बच-बचाकर यह जो कुछ भेजता था उसे मैं अंचल* ऑफिस में जमा करती जाती थी। लाचारी में ही मीनू के लिये उसमें से दो चार रुपये निकालती थी। बाकी जितना बचा था वह सारा उस एक ही महीने में खतम हो गया। उसके बाद पचास रुपये तक इधर-उधर से भी लेने पड़े। मेरी मीनू के भाग्य से किसी ने भी रुपये देने से इनकार नहीं किया। इतना तो कहना ही पड़ेगा" गौरी अम्मा ने कहा।

"अजी, जिसने उसे एक बार भी देखा वह उसके लिये देने से कैसे इनकार कर सकता था?" नाणी अम्मा ने कहा।"

"उसको दुबली होते देखकर मैंने सेर भर घी दवा आदि डालकर बना रखा था। लेकिन एक शाम भी उसे न खिला सकी। वह घी सारा का सारा, उसके बिछौने के पास बत्ती जलाने में खर्च हुआ। रात भर बत्ती जलती थी। मिट्टी का तेल मिलता ही नहीं था" गौरी अम्मा ने कहा।

"कभी मिल भी जाता तो यह बेइमान एक बोतल के लिये एक रुपया लेते थे। तकलीफ की तो कोई बात ही नहीं थी। लेकिन उस पर भगवान् ने आँख जो मूँद ली, उसी का दुःख है।" नाणी अम्मा ने कहा।

"किसी-किसी ने अस्पताल में ले जाने की राय दी थी। पर वहाँ भी दवा का इन्तजाम हमीं को बाहर से करना पड़ता। देखभाल कराना हो तो नजराना भी देना पड़ता। एक और भी

---

*अंचल ऑफिस = रियासती पोस्ट ऑफिस

बात है। वहाँ जगह भी कहाँ मिलती। ज्यादा से ज्यादा ओसारे के कोने में। अगल-बगल में कैसे रोगी होंगे, पास में कोई मर भी जा सकता है, यही अस्पताल का हाल है। यह सब भी कुछ लोगों ने कहा तो मुझे लगा कि कहीं मेरी बच्ची वहाँ ले जाने से घबड़ाकर ही न मर जाय। परमू ने भी ऐसा ही सोचा।" गौरी अम्मा ने कहा।

मुझे तो अस्पताल के नाम से ही डर लगता है। सड़क पर पड़ी-पड़ी मर जाऊँ सो मंजूर, लेकिन अस्पताल में जाने की नौबत न आवे, यही मैं मानती रहती हूँ। नाणी अम्मा ने कहा।

जयरामन ने विह्वल स्वर में रुक-रुककर कहा, "अस्पताल में ले जाकर देखती, तब ठीक-ठीक पता चल जाता?"

गौरी अम्मा को बेटे के सामने एक अपराधिनी की भाँति डर मालूम हुआ और वह नाणी अम्मा की तरफ ताकने लगी मानो उनसे मदद मांगती हों।

"नाणी दीदी, मैंने अपनी लड़की के लिये क्या कुछ उठा रखा? इसे जरा समझा दो!"

नाणी अम्मा उठीं, पान थूककर कुल्ला किया और थोड़ा पानी पिया। 'तम्बाकू का रस अन्दर चला गया' कहती हुई आकर अपनी जगह पर बैठ गयीं। बोलीं,—

"सुनो बेटा, अस्पताल में हमारे जैसे लोगों को कौन पूछने वाला है? उस लोहार कोच्चूही के लड़के का पैर टूटने पर उसे अस्पताल ले जाया गया था। वह अपना जो अनुभव सुनाता है, सुनने ही लायक है। अस्पताल में पैसे वालों का ही काम बन सकता है,बेटा। गरीबों को तो वहां सिर्फ डांट फटकार ही मिलती है।"

उसका पैर टेढ़ा-मेढ़ा हो गया है। ठीक से अब वह चल भी नहीं सकता। गौरी अम्मा ने कहा।

कैसे चल सकता है ? हड्डी टूटने पर तुरन्त बैठाकर पट्टी न बांधी जाय तो ठीक होगी कैसे ? बच्चे का गिरने से पैर टूटा था सवेरे और उसे अस्पताल पहुँचाते-पहुँचाते दोपहर हो गया। नाणी अम्मा ने कहा।

उतना समय तो लगता ही। आठ साल के बच्चे को उठाकर चार मील जो लेजाना था ! गौरी अम्मा ने कहा।

डाक्टर को दिखाने पर उन्होंने ठहरने को कहा। बच्चे को ओसारे पर सुलाकर लोग बैठ गये। लड़का बेचारा मारे दर्द के छटपटा रहा था। डाक्टर लोग पास से ही इधर-उधर आते जाते थे। लेकिन बच्चे को देखने को किसी को समय नहीं था। कोच्चूट्टी एक दो के सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया भी। एक डाक्टर ने कहा कि पट्टी बांधने के लिये रूई और कपड़ा अस्पताल में नहीं है। बेचारा बाज़ार जाकर खरीद लाया। तब भी उस बच्चे की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इस बीच अनेक लोग आये और अपना काम कराकर चले गये। वे सब पैसे वाले थे। उनके साथ हंस-हंसकर बातें करने के लिये डाक्टरों के पास समय था। कोच्चूट्टी फिर जाकर गिड़गिड़ाया कि उसके बच्चे का पैर टूट गया है। बांधने में देर होगी तो पैर ठीक नहीं होगा।

यह सुनकर बड़े डाक्टर ने कहा,

"आज समय नहीं है। तुम कल ले आना"

उस बेचारे ने रोते हुए पट्टी बांधने की फिर प्रार्थना की।

"तुम से कहा न कि आज नहीं हो सकता है ?" डाक्टर ने कहा और अपनी कार में बैठकर चला गया।

कितने निर्दयी होते हैं ये डाक्टर ! गौरी अम्मा ने कहा।

अब वह बेचारा क्या करता ? कैसे फिर उस लड़के को चार मील ले जाता और फिर लाता ? थोड़ी देर के बाद चपरासी ने आकर कहा, 'सब डाक्टर लोग चले गये। बड़े डाक्टर अपने

लड़के से मिलने गये हैं जो विलायत से पढ़ाई खतम करके पांच छः साल पर लौट रहा है—नाणी अम्मा ने कहा।

हां, पांच छः साल के बाद बेटे को जो देखना था! कितनी आनन्द की बात थी—गौरी अम्मा ने कहा।

कहां एक का पैर टूटने से चिल्लाना और कहां बेटे को देखने के आनन्द में दौड़ना! अगर आधा घण्टा देर से ही देखने जाता तो क्या हो जाता? ज्यादा क्या कहा जाय! दूसरे दिन ही इस बच्चे का पैर बांधा गया। नाणी अम्मा ने कहा।

थोड़ी देर की चुप्पी के बाद नाणी अम्मा ने कहा;

"हम अस्पताल नहीं ले गये तो उससे क्या हुआ? चिकित्सा में कोई कमी हुई बेटा, भगवान् ने उसे उतने ही दिन के लिये भेजा था।"

जयरामन खम्बे का सहारा लिये शून्य दृष्टि से टूटे फर्श की तरफ ताकने लगा जिस पर सूरज की किरणें छप्पर के अनेक छिद्रों से होकर कई तरह की आकृतियां बना रही थीं।

बेटा, अब उठो, नहा-खाकर थोड़ा आराम करो। इस पोटली में क्या है? नाणी अम्मा ने कहा।

जयरामन जहां बैठा था वहां से हिल तक नहीं सका।

उसका कपड़ा होगा। नाणी दीदी, किस बच्चे के हाथ जरा भेज दोगी? गौरी अम्मा ने कहा।

"क्या चीज़?"

"एक छटांक भर मट्ठा जो मैंने मांगा है।"

"अरे हां, मैं तो भूल ही गयी, अभी भेजे देती हूँ।"

नाणी अम्मा जाने के लिये उठती हुई बोली,

"बेटा, मां को धीरज बंधाने के लिये अब तुम्हीं एक हो। भगवान् ने हमें दिया ही नहीं था। सिर्फ दिखाकर खींच लिया।.....तुम दुःखी मत होना बेटा।" तब गला साफ करके

कहा, "सच कहूँ बेटा ? इस महंगाई के ज़माने में भी उसे भूखी मैंने नहीं देखा और न उसे मैले कपड़े पहने देखा। दस साल की उम्र तक उसे हीरे मोती से बढ़कर ध्यान से पाला गया था।"

नाणी दीदी, बीमार पड़ने के पहले दिन उसने मुझ से एक नया फ्रॉक सिला देने को कहा था। उसकी वह इच्छा·····। गौरी अम्मा ने कहा।

वाक्य पूरा होने के पहले ही जयरामन ने कागज की पोटली मां के आगे फेंक दी।

नाणी अम्मा ने पोटली खोल दी। गौरी अम्मा ने उधर देखा भी नहीं।

मां की गोद को सूना करके सिधारी हुई छोटी बहन के लिये खरीदकर लाया हुआ वह फ्रॉक जब पोटली से निकाला गया तब लड़ाई के मैदान में शत्रुओं को गोलियों से उड़ा देने वाला वह वीर युवक सैनिक भी बरबस रो पड़ा !

कलक्टर

चन्द्रन तीन साल का हो गया। वह दीदी की किताब उठाकर पढ़ता है। जो दीदी नहीं पढ़ सकती, वह भी पढ़ता है। स्लेट, काग़ज़, फ़र्श, दीवार सब जगह वह लिखता है। लिखना-पढ़ना ही उसका मुख्य काम है। लेकिन उसकी भाषा सिर्फ उसको ही मालूम है।

"बेटा इन्दिरा से भी जल्दी पढ़ेगा" कहकर माँ ने अपने पति के हृदय को आनन्दित कर देती।

चन्द्रन दीदी के पीछे-पीछे स्कूल जाता। कभी-कभी कपड़ा पहनकर, हाथ में स्लेट, किताब या लकड़ी जो भी मिल जाय, लेकर छाता लगाये अकेले चला जाता। लेकिन स्कूल के फाटक तक ही। इस तरह स्कूल जाना उसका एक खास दिलबहलावा था।

"बच्चा स्कूल जाने में बड़ा उत्साह दिखायेगा" कहकर पति पत्नी को खुशकर देता और माँ बेटे को चुम्बनों से ढक देती।

अपनी तोतली बोली में चन्द्रन गलत-सलत भजन की कुछ पंक्तिया गाता,

"हे पभो आनन्द दाता ग्यान हम को दीजिये
दूल कल के हल बुलाई को बलाई कीजिये।"

और सारे घर को आनन्द से भर देता।

* * *

वह चन्द्रन के अक्षराम्भ का दिन था। उसने सवेरे ही नहा कर धुले कपड़े पहने, टीका लगाया और माँ का चुम्बन पाया। फिर दीदी का हाथ पकड़े पिता जी के साथ अक्षराम्भ के लिये मन्दिर की तरफ़ चल पड़ा।

सरस्वती का मन्दिर केले के थम और फूलों की मालाओं से सजाया गया था। वहाँ की सजावट और भीड़ देखकर चन्द्रन बड़ा खुश हुआ। सुन्दर मण्डप, जगमगाती दीप माला और पुष्प हार से अलंकृत सरस्वती की मूर्ति देखकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। सरस्वती देवी के सामने पिता ने उससे हाथ जोड़वाये। चन्द्रन की नज़र दूसरे बच्चों की तरह, मूर्ति के सामने रखे प्रसाद पर थी। विद्यारम्भ* का कृत्य समाप्त होने पर कई लोग पुजारी को दक्षिणा आदि देने की रस्म पूरी करके अपने अपने ग्रन्थ और प्रसाद का अपना भाग लेकर विदा हुए।

चार साल के चन्द्रन को जब एक बूढ़ा आचार्य गोद में बिठा कर सोने की अँगूठी से उसकी जीभ पर हरि का दिव्य नाम अंकित कर रहा था तब पिता भक्तिपूर्वक सरस्वती की स्तुति करने लगे। आचार्य के हाथ के सहारे चन्द्रन की नन्हीं उङ्गलियों ने एक चावल भरी थाली में जो सामने रखी थी, इक्कावन अक्षर लिखे। पिता ने उसके हाथ में पान और सुपारी के साथ जो रुपये रख दिये उन्हें उसने आचार्य को दे दिया और हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

बच्चे को आशीर्वाद देने के लिये हाथ उठाने के पहले ही, गाँव भर के उस आचार्य ने दूसरों की नज़र बचा कर दक्षिणा

---

*केरल में दशहरे के अवसर पर 'विद्यारम्भ' करने की प्रथा है। इसमें सब उम्र के स्त्री पुरुष भाग लेते हैं। अष्टमी से विजयदशमी तक मनध्याय रखते हैं। सरस्वती की मूर्ति के सामने पुस्तकें और लिखने पढ़ने की सब सामग्री रख दी जाती है। अन्तिम दिन की पूजा के बाद लोग वर्णमाला के सब अक्षर लिखते और कुछ पढ़कर प्रति वर्ष विद्यारंभ करते हैं।

के रुपये गिनकर मिला लिए। उनके चेहरे से तृप्ति या अतृप्ति का कोई भाव प्रकट नहीं हुआ।

प्रतीक्षा में बैठी माँ के पास, 'केला और चूड़ा मिला है माँ' कहते हुए चन्द्रन पहुँचा।

माँ ने लड़के से कहा, "अक्षरारम्भ हो गया बेटा? क्या क्या सीखा है जरा सुनाओ तो।"

पति से कहा, "बच्चे के लिये एक स्लेट खरीद देनी चाहिये?

इन्दिरा को सरस्वती मन्दिर की सजावट के बारे में ही बातें सुनानी थीं। पिता को अक्षरारम्भ के समय लड़के के चेहरे के क्या हाव-भाव थे, इसका वर्णन करना था।

दूसरे दिन स्लेट खरीदने के समय तक समय बरबाद नहीं किया गया। इन्दिरा की ही स्लेट पर मां, बाप और दीदी ने उसे लिखाना शुरू कर दिया। उनका यह अनुमान गलत नहीं निकला कि चन्द्रन जल्दी-जल्दी सीखेगा।

पांचवा साल पूरा होने पर चन्द्रन दूसरे दर्जे में दाखिल किया गया। जिस दिन वह स्कूल में भर्ती हुआ, वह दिन घर भर के लिये एक गौरव का दिन था। घर से निकलते समय, स्कूल में किन-किन बातों के सम्बन्ध में होशियार रहना चाहिये, आदि कुछ बातें मां ने समझादीं। रास्ते में, किन-किन बातों पर खास ध्यान देना चाहिये ऐसी कुछ बातें पिता ने बतलायीं। और बाकी सब बातों के बारे में ध्यान रखने की जिम्मेवारी इन्दिरा पर डाल दी गयी। इन्दिरा को इससे बड़ा अभिमान हुआ।

स्कूल की आलीशान इमारत ने चन्द्रन को आकर्षित किया। वहां के बच्चों की संख्या देखकर उसे बड़ी खुशी हुई। क्लास के दरवाजे पर जब वह जाकर खड़ा हुआ तब भीतर के बच्चों में से कुछ ने हाथ बढ़ाकर और कुछ ने उसकी ठुड्डी पकड़कर उस का स्वागत किया। कुछ ने उस हंसमुख लड़के को अपने पास

बैठने के लिये बैंच पर हाथ मार कर इशारे से बुलाया। चन्द्रन मारे संकोच के खड़ा ही था कि एक लड़के ने उठकर उसका हाथ पकड़ा और उसे अपने स्थान पर ले जाकर बिठा दिया और पास वाले लड़के को सरकाकर खुद भी बैठ गया।

एक लड़के ने चन्द्रन से पूछा, "दूसरी किताब है ?"

दूसरे ने उसके अभिभावक से कहा, "इसे दूसरी किताब खरीदकर दे दीजिये।"

पिता को यह देखकर बड़ा आनन्द हुआ कि सब बच्चे उनके बेटे से खुश मालूम पड़ते हैं। चन्द्रन खुद भी क्लास में जो उत्साह उमड़ा था उसमें गोते लगाने लगा।

कहानियां दुहराना, पढ़ना, पाठ की नकल करना, नये लड़कों का आना, साथियों के साथ बाहर जाना, मूंगफली खाना, बच्चों के साथ खेलना—इन्हीं बातों में घण्टे, दिन, सप्ताह और महीने बीतने लगे। सवेरे उठते ही चन्द्रन स्कूल जाने की तय्यारी में लग जाता था।

माँ के कहने पर भी कि 'रात भर जोर से बुखार था। बात मानो, बेटा, आज स्कूल मत जाओ।' वह हठ-पूर्वक स्कूल जाता ही।

कुछ दिनों के बाद स्कूल में कुछ नियमों के पालन पर जोर दिया जाने लगा, अब ऐसे-ऐसे पाठ सीखने पड़ते जिनमें चन्द्रन को कोई रस नहीं आता था, घर पर भी करने केलिये लिखने आदि का काम दिया जाने लगा, पाठ याद करके नहीं आने पर दण्ड भी मिलने लगा और रोज की हाजिरी पर भी जोर दिया जाने लगा। तब चन्द्रन के मन में स्कूल के प्रति उत्साह घटने लगा।

एक दिन स्कूल जाने के समय चन्द्रन रोने लगा। मां ने कारण पूछा, लेकिन चन्द्रन ने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब मां ने कहा, "अगर पेट में दर्द होता है तो आज मत जाओ बेटा"

पिता भी सहमत हो गये। चन्द्रन खुश हो गया। वह बीच-बीच में इस बहाने से फायदा उठाने लगा। समय आगे बढ़ने लगा और चन्द्रन का पढ़ने का उत्साह पीछे की ओर हटता गया।

वर्षा, रिश्तेदारों के यहां शादियां, मन्दिर का उत्सव, आदि-आदि अनेक बहाने उसे स्कूल नहीं जाने के लिये मिल जाते।

उसे स्कूल जाना नीरस और पढ़ना-लिखना बोझिल मालूम होने लगा और वह पढ़ाई के प्रति उदासीन होता गया। किसी तरह वह चौथे क्लास में पहुंचा।

एक महीने के बाद उसने अपने एक साथी से कहा,

"इतना पढ़ना-लिखना अब मुझसे नहीं होगा। मैं फेल ही हो जाता तो अच्छा होता।

क्लास में सिखलाया नया सबक कोई उसके दिमाग में नहीं घुसता था। अध्यापक के सवालों के जवाब भी वह नहीं दे पाता। एक भी विषय ऐसा नहीं था जिसमें वह पिटाई नहीं खाता।

मार खाते-खाते चन्द्रन थक गया। जो वर्ग में नहीं पिटते उनसे वह जलने लगा और साथ ही उन्हें तंग भी करने लगा। सहपाठियों के खिलाफ अध्यापक से शिकायत करते रहना उसका धंधा बन गया।

उसने सोचकर तय किया कि अध्यापक के सवालों के जवाब में कुछ न कुछ कह ही देना चाहिये। कभी-कभी उसका जवाब ठीक भी निकल जाता, कोई सवाल बिना जवाब दिये छोड़ता नहीं था।

उसके जवाब सुनकर अध्यापक बौखला उठते और उसे 'वेवकूफ, गधा, पाजी', कहकर अपना गुस्सा उतारते।

लेकिन चन्द्रन को इसकी कोई परवाह नहीं थी। वह किसी से डरता नहीं था। मन में जो आता, सो करता। शरारती लड़कों का वह सरदार ही बन गया। नौ श्रेणी वाले उस विद्यालय में

जिनमें करीब एक हज़ार विद्यार्थी पढ़ते थे, चौथे दर्जे का यह आठ साल का छोटा लड़का सभी की काफ़ी परेशानी का कारण बन गया।

चौथे दर्जे में उसका दूसरा साल था। उसने एक दिन अपने एक मित्र से कहा, "मैं पास होना नहीं चाहता। पांचवें दर्जे में जाने पर बहुत मार खानी पड़ेगी। इसलिये मैं परीक्षा में कुछ लिखूंगा ही नहीं।"

यह सब होने पर भी चन्द्रन को नालायक कहकर नहीं छोड़ा जा सकता। पढ़ाई छोड़कर और कई बातों में वह आगे ही रहता स्कूल में जो भी उत्सव हो उसमें चन्द्रन एक मुख्य भाग जरूर लेता।

उस साल, स्कूल का वार्षिकोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाने की तय्यारियां होने लगीं। स्कूल के अधिकारियों ने, अध्यक्षता करने के लिये एक बड़े ऊंचे पद वाले सज्जन की मंजूरी ले ली।

वार्षिकोत्सव का दिन जैसे-जैसे नज़दीक आता गया स्कूल के वातावरण में उत्साह और उमंग बढ़ता गया। जहां देखो, वहीं चन्द्रन दिखाई पड़ता। तोरण बांधने, नौका गान गाने, अध्यक्ष के स्वागत की तय्यारी करने, नाटक के लिये वेष बनाने और साथ-साथ दूसरे लड़कों की शिकायत करने आदि सब बातों में वह आगे था।

अध्यक्ष वहां के एक मशहूर व्यक्ति थे इसलिये सभा में काफ़ी भीड़ हो गयी। बाजे-गाजे की हर्ष-ध्वनि के बीच सैकड़ों उत्सुक नेत्रों को परितृप्त करते हुए तथा उपस्थित लोगों का आदर सत्कार अपनी मन्द मुस्कान से स्वीकार करते हुए, अध्यक्ष महोदय मंच पर विराजमान हुए। समारोह के लिये दौड़-धूप करने वालों—जिनमें चन्द्रन भी था—के चेहरे खिल उठे।

जब अध्यक्ष ने सुनाया कि उस विद्यालय के चौथे दर्जे के एक

पुराने विद्यार्थी के नाते, उस दिन के समारोह में भाग लेने का अवसर पाकर वे बहुत प्रसन्न हैं, तब वहां के सब विद्यार्थियों के मन में उनके प्रति एक खास दिलचस्पी और अपनापन का भाव उमड़ पड़ा। यह बात उनके बहुत देर तक ताली बजाते रहने से प्रकट हो गयी।

नाटक में जिन्होंने भाग लिया उनको अध्यक्ष ने बधाइयां दीं और उनका तालियों से दर्शकों ने समर्थन किया। अध्यक्ष ने कहा,

"जिस लड़के ने आज यहां कलक्टर का अभिनय किया है उसने अपना पार्ट सफलतापूर्वक अदा किया है। कौन कह सकता है कि आगे जाकर वह लड़का एक कलक्टर नहीं बन जायगा।"

विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच से अनेकों व्यंग-सूचक दृष्टियां कलक्टर का पार्ट करने वाले लड़के की ओर दौड़ गयीं लड़के की नजर जमीन पर पड़ गयी। वह लड़का था चन्द्रन।

सभा समाप्त होने पर जब सब लौटने लगे तब कुछ लड़कों ने उसे 'कलक्टर-कलक्टर कहकर पुकारा। एक सहपाठी ने व्यंग्य किया, 'अजी, कलक्टर बन जाने पर मुझे एक नौकरी देना।'

चन्द्रन ने उस रात को पिता से पूछा, "पिता जी, कलक्टर को कितना वेतन मिलता है?"

पिता का जवाब सुनकर चन्द्रन ने अचम्भे में आकर पूछा, "हर एक महीने में?"

दूसरे दिन गणित के क्लास में गलत जवाब देने पर अध्यापक ने कहा,

"कलक्टर साहब, अपना हाथ जरा बढ़ाइये तो।"

उसने पिता से पूछा, "पिता जी, हमारे स्कूल में जो अध्यक्ष आये थे उन्होंने कहा कि वे इस स्कूल के चौथे क्लास के विद्यार्थी थे। सच है क्या?"

"हां"

"चौथे क्लास के बाद कलक्टर होने तक कितने साल पढ़ना पड़ेगा ?"

"दस-पन्द्रह साल बिना फ़ेल हुए पढ़ना पड़ेगा।"

साथियों की दिल्लगी और अध्यापकों की खिल्ली ने चन्द्रन को 'कलक्टर' के नाम से मशहूर कर दिया।

धीरे-धीरे वह इसका आदी हो गया। वह उस साल क्लास में फ़ेल नहीं हुआ। और उसके बाद अच्छे विद्यार्थियों में उसकी गिनती होने लगी। वह अब सजा भी कम पाने लगा। शरारत और बदमाशी कम होती गयी। पढ़ने में इतना ध्यान देने लगा कि और बातों के लिये उसे समय ही नहीं मिलता। सहपाठियों और अध्यापकों ने उसे 'कलक्टर' कहकर पुकारना छोड़ दिया।

जब चन्द्रन कालेज में पहुँचा तब उसके प्रोफेसर ने कहा, "चन्द्र शेखरन नायर (अर्थात् चन्द्रन) आनर्स कोर्स में यूनिवर्सिटी में इस साल प्रथम आयेगा।"

कौन कह सकता है कि वह एक कलक्टर भी नहीं बनेगा ?

चौथाई-मील दौड़

"माधवन ! फीस लाया है ?"

करीब साठ बच्चों के बीच में से एक लड़का चारों ओर देखता हुआ अपनी जगह से ज़रा सा उठा और धीमी आवाज में, "दोपहर...को लाऊंगा" कहकर बैठ गया।

"तुमको मालूम नहीं कि फीस दिये बिना क्लास में नहीं बैठना चाहिये ?" अध्यापक ने नियम की याद दिलाते हुए पूछा।

"दोपहर को लाऊंगा" बच्चे ने फिर जवाब दिया।

"तब दोपहर को ही आना फीस के साथ। अभी चले जाओ।"

बच्चे ने कुछ जवाब नहीं दिया।

"उठो।"

लड़का नहीं उठा।

"क्यों, सुना नहीं ? जाओ, उठकर चले जाओ।" अध्यापक ने गम्भीरता से कहा। माधवन चुपचाप खड़ा रहा।

सहपाठी सब हंस पड़े।

उनमें से बिना बुलाये बोलने वाले एक लड़के ने कहा, "फीस भी नहीं देगा और क्लास में से भी नहीं जायगा।"

सारी श्रेणी हंसी से गूंज उठी।

माधवन अब भी निश्चेष्ट खड़ा रहा। उसकी आँखों में आंसू आ गये और दोनों कपोलों को भिगोते हुए उसके सूखे होठों तक ढुलक आये। आंसू की दो बूंदें उसके मैले कपड़े पर भी गिरीं।

"तुम्हें मालूम है कि पिछले महीने की फीस दिये बिना क्लास में आना मना है ? ...फिर मैं क्या कर सकता हूँ ?" बच्चे की ओर बिना देखे ही अध्यापक ने कहा।

"दोपहर को ला दोगे न ? लो मेरे पास छः आने हैं । डेढ़ आना और किसी से लेकर दे दो।" "एक उदार बालक ने कहा।

माधवन ने उससे छः आने ले लिये और क्लास में चारों ओर देखा। मगर उनमें कोई और मददगार नहीं दीखा । उसने छः आने, अध्यापक के सामने मेज़ पर रख दिये।

अध्यापक ने गिनकर कहा और "बाकी ?"

कोई जवाब नहीं मिला।

अध्यापक ने कहा,—

"खैर, अभी बैठ जाओ। दोपहर को बाकी पैसा भी ला देना।"

अब वह लड़का फिर दूसरों के बराबर हो गया। क्लास की पढ़ाई में ध्यान दिया, साथियों से बातें कीं और उनके साथ हंसा।

व्यायाम शिक्षक क्लास में आये और महाराजा के जन्मोत्सव के सिलसिले में खेल में भाग लेने वाले लड़कों के नाम मांगे। माधवन ने 'तीन-पांव दौड़' और 'चौथाई-मील दौड़' दोनों में अपना नाम लिखाया।

'चौथाई-मील—दौड़ में पतला-दुबला माधवन ही जीतेगा। वह दौड़ता क्या है, उड़ता है, साथियों ने कहा। माधवन के चेहरे पर प्रसन्नता की एक पतली रेखा खिंच गयी।

दोपहर के बाद माधवन क्लास में आया। उसे पैसा नहीं मिला था। अध्यापक से सवेरे के छः आने पैसे वापिस ले लिये और जिससे लिये थे उसे लौटा दिये क्लास में बैठने से इस बार उसे किसी ने मना तो नहीं किया। लेकिन माधवन ने अपनी किताबों की पोटली उठाली और बिना किसी से कुछ कहे, किसी की ओर

देखे, सीधे दर्वाजे की ओर चला। मानिटर ने कहा, ट्रान्सक्रिपशन (नकल) की कापी ? लेकिन माधवन निकल गया मानो सुना ही नहीं।

उसने घर पहुंचकर मां से कहा,

"हमारे स्कूल में महाराजा का जन्मोत्सव है।"

चूल्हे में गीली लकड़ी डालकर फूंकती हुई मां ने, जिसकी आंखों और चेहरे में सूजन आ गयी थी, बेटे की बात की ओर ध्यान नहीं दिया।

माधवन ने आगे कहा,

"फीस कल दोगी न, मां ?"

"कल देखा जायगा," मां ने जवाब दिया। दोनों को शायद यह आशा थी कि अगले दिन भाग्योदय हो जायेगा।

दूसरे दिन सवेरे माधवन ने कहा, "मां, फीस का पैसा ?"

मां ने कोई जवाब नहीं दिया। लड़के ने स्कूल जाने की तय्यारी की।

मां पड़ोस के घरों में गयी। माधवन ने फीस नहीं दी है, यह सबों को मालूम हो गया। एक व्यावहारिक आदमी ने उसे उपदेश दे दिया।

"तुम क्यों इतनी तकलीफ उठा रही हो ? छठवें क्लास तक लड़का पढ़ चुका न ? फीस देकर नहीं पढ़ा सकती तो उसकी पढ़ाई ही क्यों नहीं बन्द कर देती ? कहीं कोई नौकरी तो नहीं रखी है कि और थोड़ा पढ़ेगा तो मिल ही जायेगी ?"

वह घर लौट आयी। मां के चेहरे से ही माधवन बात ताड़ गया।

"आज स्कूल मत जाओ, बेटा। कल देखा जायगा" मां ने कहा।

वह 'कल' दूर होता गया और दस-पन्द्रह दिन तक नहीं आया।

माधवन रोज़ मां से कहता। लेकिन पन्द्रह दिन में भी वह विधवा पन्द्रह अधन्नी का प्रबन्ध करके उसे नहीं दे सकी।

माधवन ने हिसाब लगाकर कहा, "२२ तारीख को मेरा नाम काट दिया जायगा। ऐसे भी पहले ही फीस जमाकर देनी चाहिये थी।"

मां ने सिर्फ हुंकारी भर दी। तंगी के कारण शब्द भी कम हो जाते हैं।

"जन्म-दिनोत्सव के अवसर पर खेल-स्पर्धा के लिये मैंने अपना नाम दिया है। दौड़ में मुझे ज़रूर इनाम मिलेगा। २३ तारीख को उत्सव है," माधवन ने कहा।

"क्या इनाम मिलेगा?" तब तो मास्टर साहब से कह देना कि इनाम की चीज़ फ़ीस के बदले ले लें।" बेचारी मां को यही उपाय सूझा।

"ऐसा नहीं हो सकता। फीस देने के बाद ही स्पर्धा में भाग ले सकूँगा।"

"क्या इनाम मिलेगा?"

"मालूम नहीं। सात-आठ आने की कोई चीज़ होगी। लेकिन फ़ीस पहले ही जमा करना ज़रूरी है।"

मां ने कुछ नहीं कहा।

महाराज का जन्म-दिन नज़दीक आ गया।

समारोह का कार्य-क्रम सपने की तरह माधवन के मन में छाया रहता। वह खेल की होड़ का संकल्प करके दौड़ने का अभ्यास करता।

उसका बाल-मानस स्कूल की सजावट और सुन्दर सभा-मण्डप में पुरस्कार वितरण के दृश्य की कल्पना से आनन्द से

भर जाता। मेहराब, झण्डा, केले के थम और तोरण आदि की शोभा, विद्यार्थियों और अध्यापकों के अतिरिक्त अभिभावकों और आमंत्रित लोगों की भीड़, सभा मण्डप में मेज़ पर डाली गई बढ़िया मेज़पोश, गुलदस्ता, चांदी की चन्दनदानी, इत्तर-दानी, नींबू से भरी रखी थालियां, अगरबत्ती दानी में जलती बत्तियां, जो सुगन्ध फैलाती हुई अन्धेरी रात में तारों सी चमकती हैं, इन सब दृश्यों का मानों उसके मन में चित्र खिंच गया। फिर उसे लगा, खूब बढ़िया वस्त्र पहने अध्यक्ष महोदय अध्यक्ष-आसन पर बैठे होंगे। 'तीन-पांव दौड़' और 'चौथाई मील दौड़' में विजयी होने पर भरी सभा में उसका नाम पुकारा जायगा और वह कृतज्ञतापूर्वक अध्यक्ष के हाथों से इनाम लेगा, उसके दोस्तों की तालियों की गड़गड़ाहट से सभा-मंडप गूँज उठेगा। कैसी आनन्ददायक कल्पना थी।

फिर सोचता, जब वह इनाम लेकर घर लौटेगा, जो भी देखेगा उसका अभिनन्दन करेगा। कुछ लोग पूछेंगे, 'किस बात के लिये इनाम मिला है' और कुछ पूछेंगे, 'खरीदा है क्या?' मां को देखकर आश्चर्य होगा। वह अपना इनाम घर ले जाकर हिफ़ाज़त से रख देगा ताकि बच्चे उसे लेकर तोड़ न दें। ऐसे ही अनेक विचार उसके मन में आये।

फिर जब उसे फ़ीस न दे सकने की बात याद आई तब उसका चेहरा उतर गया।

वह बार-बार मां से कहने लगा, "मां, आज जैसे भी हो मुझे फ़ीस के पैसे मिलने चाहिये। फ़ीस न देने से मेरा नाम ही काट दिया जायगा।"

२० तारीख को सवेरे वह स्कूल की तरफ़ गया। विद्यालय को खूब सजाया जा रहा था। अहाते में लड़के खेल का अभ्यास कर रहे थे। दर्जियों की दूकानों पर भीड़ ही भीड़ दिखाई दी। सड़कों

की दोनों तरफ दीवारों पर सफेदी होते भी उसने देखा। संगीत शिक्षक की सहायता से लड़कियां 'वंचीश मंगल-गान' (महाराज का मंगल-गान) गा रही थीं। वह सुनकर माधवन घर की ओर दौड़ा। मां से जाकर कहा,

"मां, मां, मुझे फ़ीस के पैसे नहीं दोगी?"

"ले जाओ न!" मां ने गुस्से में कहा। "मुझ से अब और इन्तजाम नहीं हो सकता। आगे पढ़ना बन्द कर दो।"

"इस महीने की भी फ़ीस देनी बाकी है। जन्म दिन के बाद मैं पढ़ाई बन्द कर दूँगा। फ़ीस के लिये पैसा नहीं है तो कैसे पढ़ूंगा।

"मत पढ़ो।"

उसके बाद मां से उसने फिर कभी पैसा नहीं मांगा। उसने अपनी सब किताबें उठा लीं। छठी किताब और भूगोल की किताब भी ले ली। दोपहर की छुट्टी के समय वह स्कूल के फाटक पर गया। अपनी किताबें उसने बेचने की कोशिश की। एक लड़के को भूगोल की जरूरत थी पर उसके पास पैसे नहीं थे।

एक सहपाठी ने मदद करने के विचार से कहा—

"उस कुएं के पास जो डिपो है वहां पुरानी किताबें भी खरीदते हैं। मैं उन लोगों को जानता हूँ। तुम्हारे साथ चलकर बिकवा दूँगा।"

डिपो वाले ने दोनों किताबों को जो देखने में बिलकुल नई थीं आधे दाम पर खरीद लिया। माधवन को नौ आने पैसे मिले। उसकी खुशी का ठिकाना नहीं था।

किताबें बेचने से जो पैसा मिला उससे उसने २० तारीख को पिछले महीने की फ़ीस चुकायी। वह क्लास में बैठ गया। मोनिटर ने जन्म-दिन उत्सव का चन्दा मांगा। बे फिक्री के साथ उसने एक आना पैसा दे दिया। झण्डी बनाने के लिये उसके पास एक

अधन्नी बच रही। अब वह क्लास के दूसरे विद्यार्थियों के बराबर हो गया। सजाने आदि के काम में उसने उत्साह से भाग लिया। उत्सव के पहले दिन की रात को कई दूसरे विद्यार्थियों की तरह माधवन को भी नींद नहीं आई। कपड़े साबुन से साफ कर सूखने के लिये डाल दिये। ठण्ड में पड़े-पड़े बहुत देर तक हवाई महल बनाते रहने के बाद उसकी आंखें लग गईं। नींद में वह नौका गान गाने लगा।

"तेय तेय त्तका तेय तेय तो"

मां ने, नींद जग कर पूछा, "क्या है, बेटा ?"

"मां ! मां !! पैर टूटा, मेरा पैर टूटा।" लड़के का चिल्लाना सुनकर मां घबराकर उठ बैठी।

"क्या है बेटा ?" पूछती हुई मां ने लड़के को छूकर देखा। लड़का गाढ़ निद्रा में था।

रोज देर से उठने वाला लड़का दूसरे दिन खूब सबेरे उठा उसने नित्य क्रिया से निवृत होकर बासी भात खा लिया और अपने अधगीले कपड़े पहनकर एक झण्डी हाथ में लिये वह निकल पड़ा। उसके चेहरे पर, राजा के लिये लड़ाई करने रणक्षेत्र में जाने वाले एक वीर योधा का गाम्भीर्य और विजेता का अभिमान तथा राज भक्ति का भाव प्रस्फुटित हो रहा था।

वंचीश-मंगल-गान गाते हुए जब माधव आगे बढ़ा तब प्रकृति मानो आनन्द से पुलकित हो स्तब्ध रह गयी।

महाराजा के जन्मोत्सव के उपलक्ष में आयोजित प्रभात कालीन बारूद-विस्फोट ने माधवन की स्फूर्ति को बढ़ा दिया।

सारी जगह को एक नया रूप देने वाली उस शानदार सजावट और सुन्दरता के बीच उस बालक ने सबों का स्वागत करते हुए महाराजा के प्रति मंगल कामना की भावना हृदय में धारण किये फाटक के शानदार मेहराब से होकर विद्यालय के अहाते में

प्रवेश किया। उसके आनन्द का अब ठिकाना न रहा।

माधवन का व्यक्तित्व मानो विद्यालय की भीड़ में विलीन हो गया। वह भी वहां के अनेकों अगण्यों में से एक हो गया। मगर दूसरों की तरह माधवन ने भी इसकी परवाह नहीं की।

खेल-स्पर्धा की तय्यारी पूरी हो गयी। खेल शुरू होने के पहले घण्टी पर घण्टी बजने लगी।

खेल में भाग लेने वाले जैसे-जैसे एक जगह आ-आकर खड़े होने लगे, सबों की नज़र उनपर पड़ने लगी। माधवन भी इस दल में था। और दूसरों की तरह वह भी लोगों के ध्यान का एक केन्द्र बन गया।

खेल शुरू हुआ। छोटे बच्चों द्वारा 'लेमन चूस' उठाना और सूई में धागा पिरोना आदि होड़ खतम हो जाने के बाद बड़े बच्चों की बारी आयी। कुछ लड़कों ने अपना कुर्ता उतार दिया, कुछ ने बेल्ट कस ली और कुछ ने कपड़े से ही कमर कस ली। होड़ में भाग लेने वालों में एक उद्वेग पैदा हो गया। बढ़ावें और प्रोत्साहन के बीच कुछ जीते, और व्यंग और सहानुभूति के बीच कुछ हारे।

'तीन-पांव दौड़' में भाग लेने वालों के नाम पुकारे गये। बालकों की चार जोड़ियां दौड़कर सामने आ गयीं। सबों की नज़र उन पर जा लगी। माधवन का साथी था, रामन। चारों जोड़ियों के पांव-बांधे गये।

शान शौकत में रहने वाले और घर से बाहर प्रायः नहीं निकलने वाले अफ़सर लोग; जो महाराज के जन्म-दिनोत्सव के उपलक्ष में आज बाहर निकल कर वहां पधारे थे, पुराने गमछों से बंधे पांव वाले गरीब लड़कों की होड़ के नतीजों का अलग-अलग अनुमान लगाने लगे। उनके अनुमान के अनुसार सबों को जीतना चाहिये।

"एक, दो, तीन"—दौड़ शुरू हो गई।

"माधवन ! रन, रन, रन,—अप, अप, अप"—लड़कों ने बढ़ावा दिया। माधवन-रामन की जोड़ी सबसे आगे निकल गई।

पीछे की जोड़ी से माधवन-रामन की जोड़ी कम से कम एक गज़ आगे थी। दर्शकगण विजयी जोड़ी के बारे में निर्णय करके अगले खेल के लिये उत्सुक होने लगे।

"माधवन-रामन ! अप, अप, अप"—लड़कों ने फिर चिल्लाना शुरू किया। दर्शकों का ध्यान दूसरी जोड़ी की ओर गया ही नहीं। माधवन-रामन जोड़ी को बधाइयां देने के लिये लोग गला साफ करके तय्यार हो गये; लेकिन अचानक वह जोड़ी धड़ाम से गिर गई। गिरते ही सहानुभूति सूचक 'आह' शब्द आकाश में व्याप्त हो गया।

उसके बाद की जोड़ी को बढ़ावा देने वाली, "मुकुमारन-चाको ! अप, अप, अप," की ध्वनि लड़कों ने और भी ऊंचे स्वर से की। चारों तरफ जयघोष और करतल ध्वनि गूंज उठी।

माधवन के बायें घुटने पर, गिरने से, काफी चोट लगी थी। साथियों ने एक कपड़े से उसका घुटना बांध दिया। एक घायल सिपाही की तरह वह अभिमान पूर्वक इधर उधर घूमता रहा। उस दुबले-पतले बालक के चेहरे पर हार का कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता था।

वरीद ने गोपालन से कहा,

"दोस्त, चौथाई मील की दौड़ में इनाम तुम्हीं को मिलेगा। चौदह आने का एक कांच का मर्तबान है इनाम।"

"मर्तबान न भी मिले तो कोई हर्ज नहीं। शर्मिंदे की नौबत न आवे तो गनीमत है। माधवन के घुटने में कोई चोट-ओट नहीं है। पट्टी-वट्टी दिखावे के लिये बांधकर घूम रहा है। मुझे सिर्फ़ उसी का डर है," गोपालन ने कहा।

चौथाई मील दौड़ के लिये नाम पुकारे गये। यह आखिरी दौड़ थी। चार लड़के दौड़ के लिये आकर खड़े हो गये। जरूरी निर्देश दे दिये गये।

वरीद ने कहा,

"माधवा, पांव की पट्टी खोल दो।"

क्यों खोलना चाहिये! यह बिना समझे ही माधवन ने पट्टी खोल दी। इस समय भी घुटने से खून निकल रहा था।

'अहा, तू न इतना बड़ा है?' माधवन ने अपने घाव को देख कर प्रश्न किया और कहा, "कोई बात नहीं। स्वप्न देखा था कि पांव टूट गया है।"

दौड़ शुरू हो गई। चारों तेजी से भाग दौड़े। कुछ दूर के बाद माधवन और गोपालन बाकी दोनों को पीछे करके आगे हो गये। फिर दोनों में होड़ बढ़ी। दोनों सिर उठाये, तनी छाती आगे किये, बंधी मुट्ठी से हवा को चीरते आगे बढ़े जा रहे थे। बढ़ावे की ध्वनि ऊँची और लम्बी होती गई।

दर्शकों की उत्कण्ठा भी बढ़ी। गोल पर दोनों एक साथ नहीं पहुँचे, यह सिर्फ वही देख सके जो बड़े ध्यान से, गोल के पास खड़े, निरीक्षण कर रहे थे।

निर्णायक ने विजेता का नाम घोषित किया, "गोपालन।" वह नाम अभिनन्दन के जयघोष में विलुप्त हो गया।

"अच्छा अगले साल मैं दिखा दूंगा"—कहता हुआ माधवन घर की ओर चल पड़ा।

पहली चिट्ठी

सब तय्यारी पूरी हो गयी। दीवारों पर सफेदी करने का काम खतम हो गया। घास-फूस, कूड़ा-करकट सब निकाल कर अहाता साफ कर दिया गया। कमरे और फर्श झाड़-पोंछ और धो कर साफ कर दिये गये। भोज की तय्यारी के लिये सब सामान भी मंगा लिया गया। धोबी भी कपड़े दे गया। सबों के दिल में एक नया उत्साह उमड़ पड़ा। दूसरे शहरों में काम करने वाले भी छुट्टी में घर आ गये। बस, एक ही चीज़ बाकी रह गयी। किसी तरह एक रात और बीत जाय (तब, महाबली[1] के आगमन का दिन भी हो जायेगा।)

शाम हो गई। सात बत्ती डाल कर बड़ा दीप जलाया गया। चारों ओर ऐश्वर्य ही ऐश्वर्य का दृश्य था। पता नहीं एक दम यह परिवर्तन सब जगह कैसे नज़र आने लगा! कल तक जो उजाड़-सा दीखता था आज मानों किसी जादूगर के कौशल से खुशहाल दीखने लगा। अहाते में वृत्ताकार सजाये फूल अपनी ताज़गी खो कर भी चांदनी में चमक रहे थे; मानों चांद को देख कर व्यंग से मुस्कुरा रहे हों, क्योंकि चन्द्रमा का पूरा गोलाकार होना अभी बाकी ही था।

बच्चे फाटक तक दौड़ दौड़कर खुशी से चिल्लाने लगे।

ओणम आया, ओणम आया।

---

१. वामनावतार विष्णु ने महाबली की सारी भूमि दान में लेकर उसे पाताल-पुरी भेज दिया। पर उसे वर्ष में एक बार आकर अपनी प्रजा को देखने की अनुमति दे दी। केरल में महाबली के आगमन का उत्सव भादों मास में तिरवोणम् नक्षत्र के दिन ओणम के नाम से मनाया जाता है।

पेट्टू देव, तय्यार हो जाओ।

घर घर से चिल्लाने वाले बच्चों में होड़ मच गयी कि कौन सबसे ज्यादा ज़ोर से चिल्ला सकता है।

दीदी ने मुझसे पूछा, "कुट्टप्पा! ओणम के आह्वान में तुम क्यों नहीं भाग लेते?"

मैं भी चिल्लाने में शामिल हो गया।

मां ओणम के स्वागत में 'पूवटा'[1] बनाने बैठी थी। आटा सान कर गुड़ और नारियल मिलाया जा चुका था।

मां ने मुझे मदद के लिये बुलाते हुए कहा, "बेटा, एक कपड़ा लेकर इन पत्ते के टुकड़ों को ज़रा पोंछ तो दो।"

मगर मैं नींद का बहाना करके बच गया।

मां दूसरे दिन की तय्यारी में रात को देर तक तलने-पकाने में लगी रहीं। बीच-बीच में जग जाने से मुझे सब मालूम हो जाता था।

दूसरे दिन सबेरे बच्चे ओणम का जयघोष करने लगे। लेकिन मैं अपने बिछौने से नहीं उठा। जब पिता जी ने कहा, "उठते क्यों नहीं हो?" तब जाकर मैं उठा।

हाथ में धनुष और तीर लिए ओणम का गीत गाते हुए फूल चुनने वाले साथियों के संग भी मैं नहीं गया।

दस बजे के करीब भोजन तैयार हो गया। एक पंक्ति में सबके लिए बराबर-बराबर पत्ते लगाये गये। दाहिनी ओर एक बड़ा दीप जला कर रखा गया था, और उसके सामने एक पत्ता * लगाया

---

१. एक मिठाई जिसे चावल के आटे में गुड़ और नारियल मिला कर पत्ते में लपेट कर तवे पर पका कर बनाते हैं।

*केरल में हर त्योहार या विशेष अवसर पर भोज के सिलेसिले में गणपति का ध्यान कर एक पत्ते पर सब भोज्य पदार्थ परस देने की प्रथा है।

गया था। पहले सब चीजें इसी पत्ते पर परसी गयीं। फिर बाकी पत्तों पर। दीप के पास पिता जी का आसन था। उनकी बगल में बैठने के लिये मैं बुलाया गया लेकिन मैं उधर नहीं बैठा। जब भात में दाल और घी मिला कर खाने लगा तब मां ने कहा, "थोड़ा पापड़ भी मिला कर खाओ, बेटा।"

मां की बात भी मैंने अनसुनी कर दी। उस पापड़ की तरफ देखते ही मुझे डर लगा। मेरे पास बैठे मेरे छोटे भाई ने दुबारा पापड़ मांगा। मैं उदारता पूर्वक 'यह लो' कह कर अपना हिस्सा देने लगा।

मां ने मना करते हुए उसे दूसरा पापड़ दे दिया और कहा, "तिरुवोणम के शुभ दिन पर जूठा नहीं खाना चाहिए।" और मुझे एक और लेने को कहा। मैंने कहा 'ना हीं' कर दी।

सब्जी, सांभार (सब्जी मिली हुई मसालेदार), कालन (कढ़ी) आदि सब चीजें मैंने खालीं। फिर खीर की बारी आयी मां ने उसमें भी पापड़ मिला कर खाने को कहा। मैं पापड़ न खा कर एक बखेड़ा खड़ा करना नहीं चाहता था। इसलिए पत्ते पर जो पापड़ पड़ा था, मैंने केले में मिलाकर खा लिया। मैंने कोई भी चीज़ दुबारा नहीं ली। बल्कि परसी चीजों में से भी कुछ छोड़ दिया। दही परोसते समय मैंने 'ना' कर दिया।

"इसको आज क्या हो गया है ?", मां ने कहा

मुझे डर लगा कि अगर मां इस तरह सवाल पर सवाल करने लगेंगीं तो मेरी गलती जरूर प्रकट हो जायेगी।

खाना खतम हो गया। इतना बढ़िया खाना फिर एक साल के बाद ही मिलने वाला था। तो भी मैंने जी भर नहीं खाया।

पड़ोस के घर का गोपालन एक गेंद लेकर पहुँचा और खेलने के लिये चलने को कहा।

"वाह, खाना खाते ही खेलने कौन चलेगा ? पीछे देखा

जायेगा," कह कर मैं खाट पर जाकर लेट गया।

"चलो बाहर, कुछ खेलें" कहता हुआ वह खाट के पास आया। मेरा नया कपड़ा देखकर कहने लगा, "मुझे भी मामा ने इस तरह का कपड़ा दिया है। आज मैंने जो पहना है वह पिताजी का दिया हुआ है।"

मैं कुछ नहीं बोला।

"चलो जी, खेलने चलें। गेंद न सही, झूला ही झूलें।" उसने कहा।

"जाओ न, वह कितनी देर से बुला रहा है। क्या बात है कि आज तुम को किसी बात में उत्साह ही नहीं है," कहती हुई माँ पास आ गयीं। मैं उठकर बाहर निकला। हम झूले के पास पहुँचे तो देखा कि वहाँ दो तीन बच्चे झूलना शुरू कर चुके थे। उनमें से एक ने कहा, "गोपालन गेंद लाया है। चलो, गेंद खेलें।"

मुझे छोड़ बाकी सबों की वही राय हुई। मन्दिर के अहाते में जाकर हम खेलने लगे। थोड़ी देर में खेलने वालों की संख्या भी बढ़ गई।

कुछ लड़के दूसरे, दूसरे खेल—कबड्डी, चोर, बांध, बकरी आदि खेल में लग गये। जगह की कमी तो थी नहीं, और न बच्चे कम थे। कई तरह के खेल होने लगे।

थोड़ी देर के बाद मैं खेल से अलग हो गया। मेरा किसी भी खेल में मन नहीं लग रहा था।

"सिपाही—चोर खेल खेलेंगे," कहते हुए माधवन ने मुझे पकड़ लिया। मैंने निकल भागने की कोशिश की। लेकिन उसने छोड़ा नहीं। वह मेरा बड़ा घनिष्ट मित्र था। मैं उसकी बात टाल नहीं सकता था। इसलिये उसके जोर देने पर मैं तय्यार हो गया। राजा, मन्त्री, सिपाही, चोर, मुइई सब के नाम पुर्जी बनाई गई।

सब पुर्जियों को एक साथ मिला दिया गया। उसके बाद पुर्जियाँ बाँट दी गयीं। मुझे जो पुर्जी मिली उसे मैंने दूसरों से छिपाकर खोल कर देखा और उसे टुकड़ा-टुकड़ा करके फेंकते हुए कहा,

"इस खेल में मैं शामिल नहीं होता। चलो, कोई दूसरा खेल खेलें।"

मेरा पुर्जी फाड़ डालना किसी को अच्छा नहीं लगा। सब नाखुश हो गये। कुछ तो नाराज़ हो गये। सब समझ गये कि मुझे ही चोर की पुर्जी मिली थी। और चोर बनने में अपमान महसूस कर मैं खेलना नहीं चाहता था। सब मिल कर मुझे 'चोर चोर' कह कर चिढ़ाने लगे। बार-बार 'चोर' शब्द जब मेरे कान में पड़ा तब मैं चौंका और परेशान हुआ। बदले में उन्हें 'चोर' कहने की भी हिम्मत मुझे नहीं हुई थी। अपनी हार मान कर मैं उदास खड़ा रहा।

मैं घर लौट आया। पड़ोस के घर में स्त्रियाँ 'कैकोहिक्कली' (ग्राम्य नृत्य) में लगी थीं। जो गाना चल रहा था वह मुझे बहुत प्रिय था। उस समय जो गा रही थी वह मेरी बहन जानकी चेची (दीदी) थी। जानकी चेची ने उसका अच्छा अभ्यास किया था। जब वह उस गीत को गाते हुए नृत्य करती तब सिर्फ बारह साल का मैं भी देखता रह जाता था। उसके पावों की थिरकन और आगे पीछे होना, देखकर देखने वालों का मन आश्चर्य और आनन्द से विभोर हो जाता था।

'विजन विपिन में, हे इन्दु वदने! तुम जग कर दुःख सागर में डूबे क्या करती हो?'*—दमयन्ती को जंगल में छोड़कर भागे नल के विलाप का यह गाना उसी से मैंने सीखा था।

---

*मूल, "विजने वत महती विपिने नी युणर्न्निन्दु—
वदने वीणन्तु चेय्वू कदने?"

उसका राग और कण्ठ-माधुर्य मुझे बहुत भला लगता था। उसके गाने में इतनी तन्मयता होती थी कि सुनने वालों का हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सकता था।

उसका नृत्य जाकर देखने की मेरी इच्छा हुई। लेकिन तुरन्त मैंने इस इच्छा को दबा दिया, क्योंकि मुझे लगा कि मां भी उधर ही होंगी। माँ के सामने जाने से मैं बचना चाहता था।

सीधे घर चला गया। माँ घर पर ही थीं।

"क्या बात है बेटा ? आज तिरुवोणम होने पर भी तुम बहुत उदास दीखते हो ?"

"कुछ नहीं।"

"ऐसा नहीं हो सकता। क्या किसी से झगड़ा हुआ है ?"

"नहीं।"

"तब क्या कारण है ? बताओ तो सही। आज पेट भर खाना भी नहीं खाया। जब सब लड़के खेल रहे हैं तब तुम अकेले उदास होकर यहां कैसे ?"

मैंने कुछ जवाब नहीं दिया।

"कहो बेटा।"

"कुछ नहीं।"

"तुम्हें क्या चाहिये ? कॉफी पिओगे ?"

मैं चुपचाप खाट पर जाकर लेट गया। और अपनी उदासी के कारण के बारे में सोचता रहा। लेकिन कुछ कहा नहीं। कहने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। मैंने जो गलती की थी वह मुझे चुभ रही थी। यदि मैं कह देता तो मेरा दिल हलका हो जाता। लेकिन मारे डर और शरम के मैंने उसे छिपा रखा।

❀ ❀ ❀

बहुत दिनों तक मैंने अपनी बात छिपाकर रखी। किसी को

भी उसका पता नहीं लगा। लेकिन अब उसे और छिपाये रखने की जरूरत नहीं। अब तो वह इतनी पुरानी हो चुकी है कि डर की बात ही नहीं रह गयी। फिर भी भार तो बात खोल देने से ही हलका होगा।

उन दिनों मलयालम स्कूल के पाँचवें क्लास में पढ़ता था। मेरे एक सहपाठी राम कृष्णन को महीने में अपने पिता के यहां से दो-तीन पत्र आते थे। उसके पिता कहीं बाहर काम करते थे। राम कृष्णन को बार-बार पत्र आते देख कर मेरे मन में भी पत्र पाने की लालसा पैदा हुई। राम कृष्णन को पिता के पास जवाब भेजते भी मैंने देखा था। एक बार जब वह चिट्ठी डालने डाक घर गया तब मैंभी साथ-साथ गया। वहां उसने टिकट खरीद कर जोभ से लगा कर लिफ़ाफे पर साट दिया और चिट्ठी लेटर-बक्स में डाल दी। डाक घर में जाने का मेरा पहला मौका था। राम कृष्णन को टिकट खरीदना, साटना, चिट्ठी डालना सब मालूम था। चिट्ठी डालने के बाद उसने कहा, "चलो अब लौट चलें।"

"सिर्फ इधर बक्से में डालने से चिट्ठी चली जायगी ?" मैंने पूछा।

"हां, जी, "उसने जवाब दिया।

मेरा एक सहपाठी ! पढ़ाई में मुझ से बहुत पीछे !! उसे पत्र आता है। वह भी पत्र लिखता है, टिकट खरीदता है, साटता है और लेटर बक्स में डाल देता है, और जिसको भेजना है उसे चिट्ठी मिल जाती है। उसका जवाब भी आजाता है। कितनी मजेदार बातें हैं ये सब।

मुझे भी एक पत्र पाने की इच्छा हुई। मैंने एक पत्र लिख कर टिकट साट कर भेजना चाहा।

कहीं भेजने के बाद ही तो पत्र मिलेगा—पास में बैठने वाले

सहपाठी वासुदेव से मैंने अपना विचार कहा। उसे भी पत्र पाने की इच्छा मुझ से कम नहीं थी।

वासुदेव ने कहा, "हम एक काम क्यों न करें ? तुम मुझे एक कार्ड लिखो और मैं तुम्हें लिखूं।"

ऐसा ही करने का हमने तय किया। सोचा, कार्ड लिखना बाक़ी होगा। लिफ़ाफ़े से खर्च भी कम पड़ेगा। दूसरे दिन दोनों कार्ड खरीदने के लिये पैसे लाये और क्लास शुरू होने के पहले ही जाकर कार्ड खरीद लाये। क्लास में ही लिखने का विचार था। वह पढ़ाई के बीच आसानी से हो सकता था।

मैंने कहा, "हम एक काम करेंगे। दूर किसी के नाम पत्र भेजना ठीक होगा। पत्र पाने वाले जवाब भी भेजेंगे। वही अच्छा होगा। नहीं तो बाकी लड़के हमारी खिल्ली उड़ायेंगे कि पास-पास बैठने वाले एक दूसरे को डाक से पत्र भेजते हैं।"

वासु सहमत हो गया। हम दोनों ने एक-एक मित्र ढूँढ़ा जिसके नाम पत्र भेजा जा सकता था। वासु ने अपने बहनोई के छोटे भाई और मैंने पर साल के एक सहपाठी गोपीनाथ को जो उस समय वैकम[1] में पढ़ता था, लिखना निश्चय किया। दोपहर की छुट्टी में हम दोनों ने पत्र लिखने का काम पूरा किया। दोनों में एक ही तरह के वाक्य थे—

प्रिय मित्र,

इतने दिनों तक तुमने कोई पत्र क्यों नहीं भेजा ? इस साल का हमारा अध्यापक काना है। हमारे घर में फूल सजाना[2] शुरू हो गया है। हमने चन्दा करके एक गेन्द भी

---

*१ ट्रावनकोर रियासत का एक शहर।

*२ ओणम के दस दिन पहले से ही आंगन में एक लिपी-पुती जगह पर बच्चे फूल सजाकर रखने लगते हैं।

खरीदी है। आजकल खेल के समय पर गेंद का खेल[1] ही चलता है। सब सुखी हैं। जवाब देना।

तुम्हारा मित्र

सिर्फ अन्त में नाम लिखने की जगह मैंने अपना नाम और पता लिखा—

एन. के. कुट्टप्पन नायर
पांचवां क्लास, बी. डिविजन
एटुमानूर

और वासू ने अपने कार्ड पर अपना नाम लिखा।

इतने ही से कार्ड की सारी जगह भर गयी। कार्ड पर दोनों ने पता लिखा। डाक घर का नाम लिखकर नीचे लकीर खींच दी और बगल में गुना का चिन्ह दे दिया। सब लिख चुकने के बाद दोनों ने एक दूसरे का कार्ड लेकर पढ़ लिया। कार्ड के बाहर ऊपर के कोने में बड़े अक्षरों में इतना और जोड़ दिया। 'प्राइवेट, यह दूसरा कोई न पढ़े।' मुझे थोड़ी शरम लग रही थी। पहले वासू ने लिखा। तब मैंने भी लिख दिया। दोनों ने डाक घर जाकर कार्ड पोस्ट बक्स में डाल दिये।

"जवाब कब आयेगा?" मैंने वासू से पूछा।

"पांच-छः दिन के भीतर आना चाहिए।" वासू ने जवाब दिया।

राम कृष्णन को पिता का पत्र मिला। वासू को भी जवाब मिल गया। उसे मैंने भी पढ़ा। वासू ने जो-जो लिखा था वही मैंने भी लिखा था। मुझे भी वासू के जवाब के जैसा ही जवाब मिलेगा, इस आशा से मैं अपने जवाब की बाट जोहने लगा।

---

*[1] ओणम के दिनों में गेंद का खेल एक खास तरीके से खेला जाता है जिसे ओणमकी कहते हैं और जिसमें बड़े लोग भी भाग लेते हैं।

और भी लड़कों ने वासू के पत्र को पढ़ा। एक लड़के ने ईर्ष्या से कहा, "इसमें इतना पढ़ने के लिये क्या है ?"

मेरा पत्र भी सब लड़के लेकर पढ़ेंगे, इस विचार से मैं खुश होने लगा।

डाकिया जब आया तब मैंने पूछा,

"मेरे लिये कोई पत्र है ?"

"क्या नाम है ?"

"कुट्टप्पन।"

"नहीं है बच्चे।"

मैंने डाकिये से अगले दिन भी पूछा।

"क्यों रोज़-रोज़ पूछते हो ? होगा तो दूंगा ही।" डाकिये ने कहा।

दो दिन के बाद ओणम के लिये छुट्टी भी शुरू हो गयी। मैं सोचने लगा, शायद छुट्टी के दिनों में जवाब आयेगा। तब तो स्कूल खुलने के बाद ही मिलेगा। रास्ते पर डाकिये से भेंट होगी तो पत्र होने पर देगा ही। लेकिन उसमें क्या मज़ा है ? स्कूल में ही मुझे पत्र मिलना चाहिये जिससे सब देखें कि मुझे पत्र आया है।

ओणम के एक दिन पहले मां ने मुझे पैसा देकर पापड़ खरीद लाने के लिये भेजा। पापड़ वाले से पहले ही अच्छा पापड़ बना कर रखने को कह रखा था।

मैंने रास्ते पर डाकिये को आते देखा और पूछा,

"मेरे लिये पत्र है ?"

"शायद है।"

मुझे कितनी खुशी हुई। मेरे हाथ में जो पैसा था खुशी के मारे उस डाकिये को भेंट कर देने का मेरा मन करने लगा। उसके प्रति कितना स्नेह उमड़ पड़ा ! उसने अपने हाथ के पत्रों

में से ढूँढ कर एक कार्ड निकाला और कहा,

"इसके लिये तीन पैसे चार्ज चाहिये। यह बेरंग है।"

मेरी समझ में कुछ नहीं आया। कार्ड के लिये फिर से चार्ज देना पड़ता है! यह सोचते हुए उस कार्ड को डाकिये के हाथ से लेकर उलट-पुलट कर मैंने देखा।

"यह मेरे लिये नहीं है। इसे तो मैंने ही यहाँ से भेजा था," कहते हुए उसे डाकिये की ओर बढ़ा दिया।

उसने कार्ड को देखकर बतलाया कि पत्र पाने वाले ने लेने से इनकार कर दिया है।

यह सुनकर मैं अवाक् खड़ा रह गया। एक सहपाठी, एक साथ खेला हुआ, उसने एक पड़ोसी साथी का पत्र लौटा दिया है? क्या वह अपने को इतना बड़ा समझता है?

"पास में तीन पैसे हैं? नहीं तो मैं कार्ड वापिस ले जाऊँगा।"

"कार्ड के लिये फिर पैसे क्यों देना चाहिए?" मैंने पूछा। मुझे लगा वह दिल्लगी कर रहा है।

"उस पर चार्ज तीन पैसा लिखा है। यह देखा नहीं? यह मेरे लिये नहीं है। आफिस में ले जाकर देना पड़ता है। पैसा न हो तो कार्ड लौटा दूँगा। तब मेरी जिम्मेवारी खतम हो जायगी।"

मेरे पास, पापड़ खरीदने के लिये मां का दिया हुआ पैसा तो था ही। मुझे लगा, यह बात और कोई न जाने, इसलिये तीन पैसे देकर कार्ड ले लिया और पूछा,

"इस पर चार्ज क्यों लगाया गया?"

डाकिये ने कार्ड देखकर कहा,

"इस पर 'प्राइवेट' क्यों लिख दिया? इसीलिये यह बेरंग हो गया और जिसके नाम भेजा था उसने लेने से इनकार कर दिया।"

उसके कहने का मतलब मेरी समझ में उस समय पूरा-पूरा

नहीं आया। मेरी पहली चिट्ठी इस तरह बेकार हुई। कितनी शरम की बात थी !

पापड़ के पैसे में से तीन पैसे मैंने इसके पीछे खर्च कर दिये। अब क्या करता ?

बाकी पैसे का ही पापड़ खरीदूँगा, सोचकर पापड़ वाले की दुकान पर पहुँचा।

पापड़ की दो पोटली निकाल कर उसने दी। मैंने जब पैसे दिये तब गिन कर उसने कहा,

"क्यों, मां ने दो पूरी पोटली के लिये कहा था। क्या तीन पैसे तुमने ले लिये ?"

मैंने जवाब में कहा,

"तीन पैसे का पापड़ इसमें से निकाल लो।" ऐसा करने में उसे कोई आपत्ति नहीं थी। एक पोटली पूरी भी और दूसरी कम। घर पहुँचने पर फर्क तुरन्त पकड़ा जायेगा। इस डर से मैं दोनों पोटली बराबर करने के बाद ही घर लौटा। किसी ने भी यह नहीं पकड़ा।

लेकिन तभी से मेरे मन में एक डर ने जगह कर ली। माँ से दिल खोलकर सब बातें कह देता तो वह कुछ नहीं कहतीं। लेकिन मुझे शरम लगी। मेरा भेजा पत्र लौटकर मेरे ही पास जो आ गया था। वासू, कमलाक्षी, राम कृष्णन सब जान जाते।

इस उधेड़बुन में डूबे रहने के कारण ओणम की खुशियों में मैं भाग नहीं ले सका। पत्र लौट आने और उस बात को छिपाने के लिये चोरी करने की बात मुझे चुभ रही थी।

वासू जवाब के बारे में पूछेगा तो क्या जवाब दूँगा, यह भी मैं सोच रहा था। लेकिन वासू ने पूछा नहीं। जवाब आता वह जरूर देखता, यही उसका विश्वास रहा होगा।

———

नौकर

"उनके सिर्फ एक बच्ची है, कोई लड़का नहीं है। मैंने पणिक्कर साहब से कहा है कि मैं इसे पहुँचा दूँगा।"

"यह वहाँ जाकर क्या कर सकेगा?" लड़के की माँ ने विरोध का भाव प्रकट किया।

"मैं सब काम करूँगा," कहकर रामन ने अपनी मुस्तैदी जाहिर की।

"कुछ और बड़े हो जाना तब," पारू (पार्वती) अम्मा ने कहा।

"पणिक्कर साहब उसे बड़े प्यार से रखेंगे," परमु (परमेश्वर) नायर ने कहा।

"जब मुझे लगेगा कि मुझसे नहीं होगा तब मैं लौट आऊँगा।"

"लड़का ही तय्यार हो गया है तो मैं क्या कहूँ?" कहकर माँ ने सम्मति दे दी।

"कम से कम उसे वहाँ भर पेट खाना तो मिलेगा। बाद को पणिक्कर साहब जरूर उसे एक चपरासी की नौकरी दिलवा देंगे," परमु नायर ने अपनी आशा प्रकट की।

"भय्या को जाने नहीं देना," रामन की छोटी बहन बोल उठी।

अबोध छोटी बच्ची के इन शब्दों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

दूसरे दिन सवेरे मरचीनी (Tapioca) और बिना दूध की कॉफी का प्रातल् (सवेरे का नाश्ता) लेकर जब बेटा निकला तब माँ ने खड़ी-खड़ी उसे जाते देखा और एक लम्बी सांस ली।

लड़का मुड़कर देखे बिना ही चला गया।

पहली ही बार स्टीमर पर चढ़ने पर भी रामन ने किसी तरह की जिज्ञासा प्रकट नहीं की। शहर की सड़कों पर पहले-पहल चलते समय दोनों तरफ के सुन्दर प्रासादों को देखकर भी उसने कोई कौतूहल प्रकट नहीं किया और न वहां की भीड़ से ही वह आकृष्ट हुआ।

दोपहर के समय वह पिता के पीछे एक घर के प्रांगण में जाकर खड़ा हो गया। घर के मालिक ने पूछा,

"परमु नायर का बेटा है न ?"

"जी।"

"इसका नाम क्या है ?" लड़के की तरफ ग़ौर से देखते हुए उन्होंने पूछा।

"रामन।"

"यहां इस नाम से इसे नहीं पुकारा जायेगा," मालकिन ने कहा। वह उनके पति का नाम था। उन्होंने आगे कहा, "इसे 'किट्टा' (कृष्ण) कह कर पुकारा जायेगा।"

"मालकिन जैसे चाहें पुकार सकती है," लड़के के पिता ने कहा।

"इसकी उम्र क्या है ?" पणिक्कर साहब ने पूछा।

ग्यारह, बारह साल की होगी, मालिक।" परमु नायर ने उत्तर दिया।

"यह कुएँ से पानी खींच सकता है ?" भागीरथी अम्मा ने, जिन्हें उससे काम लेना था, पूछा।

"दस दिन यहाँ रह कर खाये पीयेगा, तब सब काम करने लायक हो जायेगा।"

इसे चौके-चूल्हे का काम कुछ मालूम है ?" पणिक्कर साहब ने पूछा।

"वहां तो सब काम में मुझे खुद लगना होगा।" भागीरथी अम्मा ने कहा।

"लड़का झूठ नहीं बोलेगा, चोरी नहीं करेगा, मालकिन। अगर ऐसी कोई गलती पकड़ें तो पीटकर पीठ की चमड़ी निकाल लीजियेगा। हम कुछ नहीं कहेंगे।"

भागीरथी अम्मा ने पूछा, "ठीक से रहेगा रे ?"

लड़के ने अपना सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रकट की।

भागीरथी अम्मा ने कहा, "अच्छा, तुम लोग कुछ खाओ पीओगे न ? रे किट्टा ! हां, आज से यहां तेरा नाम किट्टा रहेगा; सुना न ? जा एक बाल्टी पानी खींच कर अपने पिता को दे। जा, हाथ-मुँह धोकर आ।"

पानी खींचने का काम उस दिन बेटे के लिये बाप ने ही किया।

परमु नायर जब जाने लगा तब लड़के से कहा,

"जो भी करने को कहा जाय, वही करना और ठीक से रहना। मैं बीच-बीच में आता रहूँगा।"

बेटे ने सिर हिलाकर प्रकट किया कि वह समझ गया है।

परमु नायर रात को जब घर पहुँचा तब पारु अम्मा ने सवालों की झड़ी लगा दी। बेटे के घर से रवाना होने से लेकर पणिक्कर के घर पहुँचने तक की सब बातें जानने को उत्सुक थी।

परमु नायर ने सब बातें सुना दीं और अन्त में कह दिया, "वह बड़ा होशियार निकलेगा।"

दूसरे दिन सवेरे पारु अम्मा ने कहा, "रात भर मुझे नींद नहीं आई।"

❀ ❀ ❀

रामन, किट्टन नाम से, नौकर होकर पणिक्कर साहब के घर में रहने लगा।

"तेरे घर में कौन-कौन हैं रे ?" मालकिन ने तीन बार अपना सवाल दुहराया तब जाकर लड़के से जवाब मिला।

रात को उसके सोने की जगह पर जो दीप रखा था वह तेल खतम हो जाने पर अपने आप बुझ गया।

किट्टन न हंसता, न खेलता। उसका वहां कोई साथी नहीं था।

तङ्कमणी के खिलौने देख कर उसका मन कभी ललचा जाता था। उसे हमेशा काम ही काम रहता था।

सवेरे-सवेरे कुएं से पानी खींचते समय घिरनी की आवाज़ पक्षियों के कलरव में मिल जाती थी और उसके साथ-साथ ठण्ड के कारण उसके दांत भी बज उठते थे।

किट्टन जब अपना काम खतम करके ज़रा आराम करने लगता तब झट भागीरथी अम्मा उसे कुछ न कुछ काम बता देतीं।

'रे, छत पर जो नारियल पड़ा है उसे गिनकर उत्तर के कोने में सजा कर रख आ। या, 'चुप बैठे रहने के बदले वह कुदाली लेकर फाटक के सामने की दूब निकाल दे।'

घर में सब के सो जाने के बाद आधी रात के समय मुर्ग के बांग देने के बाद ही प्रायः उसे सोने की छुट्टी मिलती।

जब वह सो जाता तब घर की बिल्ली उससे सट कर सोने के लिये आ जाती।

एक दिन किट्टन ने पूछा "माय जी, एक लिफ़ाफ़ा देंगी ?"

"ना, लिफ़ाफ़ा नहीं है।"

"तो लिफ़ाफ़ा खरीदने के लिये पैसा ही दे दें।"

"लिफ़ाफ़ा क्यों खरीदना है ?"

"घर पर पत्र भेजने के लिये।"

"अभी पत्र भेजने के लिये क्या खास बात है ? बेकार पैसा खर्च करना चाहता है ?"

उन्होंने पैसा नहीं दिया।

हाट पर से सामान खरीद कर लौटने पर जब वह हिसाब देने लगा तब आध आना कम पड़ा। दुबारा हिसाब सुनाया तब पैसा कम हुआ। तिबारा शुरू किया तब तीन पैसे की बढ़ती हुई।

"ओ, हो, यह चाल भी है! आज ही मुझे पता लगा। कितना भी ले जाओ, लौट कर आने पर बाकी कुछ भी नहीं रहता। अच्छा, आगे मैं होशियार रहूँगी। इस तरह की बात फिर होगी तो उस दिन तुम थाने में भेज दिये जाओगे। समझ-बूझ कर काम करना।"

वह कुछ कहना चाहता था; भागीरथी अम्मा ने उसे कहने नहीं दिया।

एक दिन परमु नायर आया, साथ एक अच्छा, पका कटहल भी लेता आया।

"यह कहां से लाये हो, परमु नायर?" भागीरथी अम्मा ने पूछा।

"घर से ही मायाजी। इस साल कटहल होने पर रामन नहीं खा सका, ऐसा कहकर उसकी मां ने भेजा है।"

"हां, हां, क्यों नहीं? यहां वह बिना खाये ही रहता है न?"

"किसी भी मां को ऐसा लगना स्वाभाविक ही है," पणिक्कर ने कहा।

"अगले इतवार को उसे जरा घर जाने की छुट्टी दे दें तो अच्छा होगा। वहां मन्दिर का उत्सव है। बच्चा है न? वह उत्सव देखना चाहेगा," परमु नायर ने कहा।

"उसे उत्सव देखने की कोई खास इच्छा नहीं है। है भी तो अगले महीने में यहीं के मन्दिर में उत्सव होगा तब देख सकता है," भागीरथी अम्मा बोली।

"उसकी मां उसे देखने के लिये बहुत तरस रही है। उत्सव के समय आयेगा इस आशा में बच्चे भी खुश हो रहे हैं। रविवार

दोपहर को जाने पर मंगलवार दोपहर तक ज़रूर लौट आयेगा," परमु नायर ने मिन्नत की।

"अभी तो कई दिन बाकी हैं," पणिक्कर ने कहा।

"हो सकेगा भेज देंगे," भागीरथी अम्मा ने कहा।

परमु नायर के चले जाने के बाद भागीरथी अम्मा ने अपने पति से कहा, "देखिये, इस छोटे लड़के की चालाकी! इसने घर पर पत्र लिखकर ठीक कर लिया है कि किसी तरह से वापिस बुलवा लिया जाय। उत्सव के बहाने जायेगा तो फिर लौट कर आयेगा नहीं। इसलिये हमें किसी दूसरे को खोजना है। कोई दूसरा मिल जाय तो इसे भेज देंगे। फिर लौटकर आने की ज़रूरत नहीं है।"

पणिक्कर ने सिर्फ हुंकारी भर दी।

रविवार को लड़के को भेजा नहीं।

एक दिन भागीरथी अम्मा ने पति से कहा,—"इस लड़के को वापस भेज देना चाहिये।"

"क्यों?"

"ऐसे ही।"

"बात क्या है? कहो न!

"ऐसा ही है। कुछ दिनों से मुझे सन्देह है कि कुछ खरीदने के लिये दूकान भेजने पर वह पैसा चुरा लेता है।"

"ऐसा तो, कोई भी करेगा ही।"

"इस लड़के को बीड़ी पीने की आदत है। ऐसी बातों के लिये बिना चुराये काम कैसे चल सकता है?"

"दूसरा कोई मिल जाय तो सोचेंगे।"

"कोई भी रहे तो परवाह नहीं। काम पूरा करने के लिये तो मुझे ही खटना पड़ता है।"

"मेरे लिये नाश्ता भेजने के लिये तो एक आदमी चाहिये न?"

"जब आदमी नहीं रहेगा तब उसके लिये और कोई उपाय निकालना ही होगा।"

"सर्वगुण सम्पन्न कोई नौकर थोड़े ही मिलेगा।"

"वह बाहर जाने पर लौटता है, जब उसकी मर्ज़ी होती है।"

"जब वह जाने लगे, जल्दी लौटने के लिये ताकीद कर देना।"

"हां, हां, मानो मैं नहीं करती हूँ। तभी तो लौटने में देर करता है। इधर उधर जाकर गप्पें लड़ाता है। यही उसका काम है।"

"दूसरे जा आकर सुनाते हैं, हमेशा सच नहीं हुआ करता"

"तो वह जो चाहे उसे करने दिया जाय। पीछे यह मत कहियेगा कि मैंने पहले हो सचेत नहीं कर दिया था"

❀ ❀ ❀

एक दिन सबेरे किट्टन ने मालकिन से पूछा,

"कल रात को फाटक किसने खोला ?"

"तुमने बन्द नहीं किया होगा," भागीरथी अम्मा ने कहा।

"बन्द करके किल्ली लगाने के बाद ही मैं आकर सोया," किट्टन ने जवाब दिया।

"तो तुम्हारे बाप ने खोला होगा," भागीरथी अम्मा ने व्यंग से कहा।

लड़के ने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

❀ ❀ ❀

कुछ दिन बाद लड़के ने फिर एक दिन कहा,

"मायजी, कल रात को पता नहीं कौन अहाते में जा रहा था।"

"जा, जा, छोकरे, तू पागल हो गया है," भागीरथी अम्मा ने कहा।

"नहीं मायजी, मैंने देखा है। मैं बहुत डर गया था," किट्टन ने कहा।

"क्या झूठ-मूठ बातें बनाता रहता है ! एक मुक्के से तुम्हारे सब दांत तुड़वा देने चाहियें।"

"हे भगवान् ! कहीं कुछ चोरी-ओरी हो जाय तब !" किट्टन ने कहा।

❀ ❀ ❀

कुछ दिन के बाद एक दिन घबराहट के साथ लड़के ने पूछा, "मायजी, मायजी, बच्ची के गले का हार कहां है ?"

"ऐं ? हार ?" पूछती हुई भागीरथी अम्मा दौड़ी-दौड़ी आयीं। पणिक्कर भी आ गये।

भागीरथी अम्मा ने पूछा, "तुमने कब देखा, रे ?"

"मैंने तो अभी बच्ची का गला खाली देखा," लड़के ने जवाब दिया।

"कल उसके गले में था क्या ?" पणिक्कर ने सवाल किया।

सब मिलकर घर—बरामदे, बाहर-भीतर और अहाते में—सब जगह ढूंढने लगे। कोई जगह बाकी नहीं रही। बच्ची से पूछा गया। बक्सा—बर्तन और कूड़े-करकट में भी खोज हुई। अहाते में झाड़ू लगाने वाली से भी पूछा गया। पति-पत्नी में आपस में सवाल-जवाब हुआ। किट्टन से बार-बार सवाल किया गया। किट्टन ने दूसरों से पूछा। सब चिन्तातुर हो गये। भागीरथी अम्मा गुस्सा करने लगीं। पणिक्कर को दुःख हुआ। किट्टन डर गया। बुहारने वाली स्तम्भित खड़ी रही। अन्त में सब एक-दूसरे की गलती निकालने लगे।

"मैं कहा करता था कि सोने का दाम बढ़ा हुआ है; हार अभी बक्से में बन्द करके रखना ही ठीक है," पति ने पत्नी की गलती निकाली।

"हां, हां, बक्से में बन्द रखने के लिये ही लोग गहना बनवाते हैं," पत्नी ने जवाब दिया।

"कहीं टूट कर बालू में गिरा हो और बुहारते समय बालू में ढक गया हो," किट्टन ने कहा।

"चुप रहो जी, क्या आंखें मूँद कर ही बुहारने का काम किया जाता है ?" बुहारने वाली ने जवाब दिया।

"चीज़ कब गायब हो गयी, इसका भी तो पता नहीं है! इन बातों पर ध्यान देने की तुम्हारी आदत ही कहाँ ?" पणिक्कर बोले।

"कोई ऐसा नियम है कि मैं ही देखती रहूँ ?" भागीरथी अम्मा ने सुनाया।

"बच्चो कभी-कभी गले से निकाल कर हाथ में लेकर खेला करती थी," भागीरथी अम्मा ने कहा।

"हाथ में लेकर खेलती थी तो क्या हाथ से चीज़ उड़ जाया करती है ?" किट्टन ने कहा।

"दो तीन बार मैंने मायजी से कहा है न कि रात को मुझे लगा कि कोई यहां आता है। कौन जाने वह चोर ही हो।"

"धत! बदमाश! इसीलिये पहले से ज़मीन तय्यार कर रहा था कि 'इधर से गया, उधर से गया ?' तुम्हें ठीक सबक सिखलायेंगे।"

पणिक्कर सब सुनते रहे। किट्टन बिना बात समझे ही खड़ा था।

भागीरथी अम्मा ने आगे कहा,—

"कहां लेजाकर रखा है रे ? निकाल कर ले आ, जल्दी।"

"मेरी आंख की कसम, मैंने नहीं लिया," किट्टन ने कहा।

पत्नी ने पति की तरफ़ घूम कर कहा, "इधर-उधर से चोर को लाकर नौकर रखने का यही फल होता है। मैंने यह बात पहले ही कही थी।"

"मालिक! मैंने नहीं लिया है," किट्टन ने गिड़गिड़ा कर कहा।

"तुम्हें अभी ठीक किये देते हैं," भागीरथी अम्मा ने कहा।

घर के सामने के आम के पेड़ पर से एक कौवे ने 'कांव-कांव' की आवाज़ की।

"लड़के ने कहा है कि किसी को आते जाते देखा है। यह

कब की बात है ?" पणिक्कर ने सवाल किया।

"और कोई काम नहीं है ?" भागीरथी अम्मा ने जवाब में पूछा।

"आप इधर नहीं थे, तभी की बात है" लड़के ने जवाब दिया।

"तुम्हारा कोई साथी रहा होगा," किट्टन से भागीरथी अम्मा ने कहा और पति की तरफ देख कर कहा, "हां, शायद आपकी गैरहाजिरी की खबर देकर पहले ही से अपने किसी साथी को बुला रखा था।"

"और भी कोई चीज़ चोरी गयी है क्या," पणिक्कर ने पूछा।

"क्या मालूम ? एक-एक चीज़ अलग-अलग ढूंढ़ी जाय तभी तो पता लगेगा।"

"रे, सच, सच बोल। हार कहां रखा है ?" पणिक्कर ने कहा।

"सच कहता हूँ मालिक; मैंने कहीं नहीं रखा है।" किट्टन ने जवाब दिया।

"तुम कबूल करोगे ज़रूर; जब पुलिस का घूंसा पीठ पर पड़ेगा तब सच मुंह से अपने आप निकल आयेगा और हार भी मिल जायेगा," भागीरथी अम्मा ने आखें दिखाते हुए कहा।

उस बालक की आँखों से आँसू बह निकले।

"मायजी, मायजी, मैंने नहीं लिया है," किट्टन रोते-रोते कहने लगा।

"लिया है, तूने ही लिया है," भागीरथी अम्मा कहती ही गई।

"ऐसा ही आप समझती हैं तो," किट्टन ने कहा।

"तो—?" पणिक्कर ने कहा।

"तो ? तो क्या ? कह दे," भागीरथी अम्मा ने कहा।

"मुझे तनख्वाह नहीं दीजियेगा," किट्टन ने कहा।

"हां, हां, तुम्हारी तनख्वाह दो हजार तो है ही। भिखमंगा

कहीं का ! तुमको मालूम है हार की कीमत क्या है ?" भागीरथी अम्मा ने कहा।

"उसका दाम जब तक वसूल नहीं हो जाय तब तक काम करता रहूँगा," किट्टन ने कहा।

"हूँ, कौन तुम्हें अब नौकर रखेगा यहाँ ? अब तुम्हारा काम बदल जायेगा। अब जेलखाने में कैदियों के साथ मिट्टी ढोने का काम होगा। जमीन से ऊपर अभी उठा भी नहीं है। इस छोकरे का गर्व देखा न !" भागीरथी अम्मा ने कहा।

"तू सच नहीं कहेगा रे ?" पणिक्कर ने समझाया।

"मैंने सच ही कहा है, मेरे मालिक ! मैंने हार नहीं लिया है," किट्टन फिर गिड़गिड़ाया।

"तुम ठीक से सोच लो। सच कह देने से कोई हर्ज नहीं है। सच नहीं कहोगे तो तुम्हें पुलिस के हवाले कर देना पड़ेगा। वे सच कहलवा देंगे। और हार भी निकलवा देंगे। बाहर आने पर तुम किसी काम के नहीं रह जाओगे। तुम्हारी हड्डी-हड्डी चूर-चूर कर दी जायेगी।"

"उसे तत्वज्ञान की बातें बता रहे हैं ?"—भागीरथी अम्मा।

पांच मिनिट समय देता हूँ। सोच कर ठीक-ठीक कह दो।

"पांच मिनट क्यों ? एक ही मिनट में कहना है तो कह दो।" लड़का सिसक-सिसक कर रोने लगा। पणिक्कर इधर-उधर हार खोजने में लग गये।

"व्यर्थ क्यों कष्ट उठा रहे हैं ? आज सवेरे ही चीज़ गायब हुई है। इस बीच यहां बाहर से कोई नहीं आया है। बुहारनेवाली को चुराने की हिम्मत नहीं हो सकती। बच्ची बाहर अहाते में निकली नहीं। हार नहीं है यह बात पहले-पहल लड़के ने ही सुनाई। इसकी जानकारी के बिना चीज़ गायब नहीं हुई है। यह मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ।"

लड़का रोता रहा।

पणिक्कर ने लड़के से कहलवाने की सब तरह से कोशिश की; लेकिन उसने चोरी की बात से इनकार कर दिया। पड़ोस के लोगों ने उसे समझाया ; लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं हुआ। आस-पास चोरी की जो-जो घटनायें हाल में हुई थीं और उनका पता कैसे लगाया गया, ऐसी अनेक बातें लोगों ने सुनायीं। सब सुन कर भी रोने के सिवा उसने कुछ कबूल नहीं किया। पड़ोस के एक मुखिया ने उस पर हाथ चला कर के कबूल करवाने की कोशिश की। वह भी व्यर्थ हुआ।

वह थाने में भेज दिया गया। शहर के अनाथ भिखमंगे बच्चे उसके पीछे-पीछे गये मानो एक जलूस निकाला गया हो। रास्ते पर माताएँ उसे अपने बच्चों को दिखा कर उपदेश देने लगीं। थाने में रोने के लिये वह अकेला रह गया।

दूसरे दिन राम पणिक्कर ने कहा, "उसने नहीं लिया होगा।"

"तब और किसने लिया होगा ?" भागीरथी अम्मा ने पूछा।

"उसने कहा था कि रात में किसी को इधर आते देखा था !" पणिक्कर ने कहा।

"हाँ, हाँ, चोरों का कहना सच ही होता है !" भागीरथी अम्मा ने जवाब दिया।

"यह बात मुझ से अभी तक तुम ने कही क्यों नहीं।"

"मैं पागल नहीं हूँ, इसीलिये," भागीरथी अम्मा ने कहा।

दो-तीन दिन बीत गये।

"थाने में जाने का रास्ता कौन-सा है ?" यह पूछते हुए, शोक-सन्तप्त दरिद्रनारायण का रूप बनाये, वोट जेट्टी से एक यात्री आगे बढ़ा।

कुछ लोगों ने गौर से देखकर पहचाना कि वह परमु नायर है। उसके आंसुओं से पुलिस अधिकारी भी उसके प्रति सहानु-

भूति से भर गये।

पिता ने पुत्र को देखा। आँसुओं के पर्दे के भीतर से लोहे की सीखचों के भीतर खड़े अपने छोटे लड़के से उसने विह्वलस्वर में बातें कीं।

परमु नायर घर लौट गया। दुःखी माता अपने बेटे के बारे में सब बातें जानने के लिये व्यग्र हो रही थी। पिता ने सुनाया, "अजी, मेरा तो आधा दुःख दूर हो गया। हमारे बच्चे ने चोरी नहीं की है। सच्चाई भगवान् एक दिन जरूर प्रकट कर देंगे, इस में सन्देह नहीं है।"

जब परमु नायर पत्नी से यह कह रहा था और रामन अपने समान दीन दुःखी कैदियों के साथ कैदखाने में असह्य पीड़ा का अनुभव करते हुए लेटा हुआ था, उस समय पणिक्कर के घर के सामने प्रांगण में चांदनी में चमकते बालू पर तंकमणी (पणिक्कर की बच्ची) बालू उठा-उठा कर आनन्द से खेल रही थी और जवानी की मस्ती से भरी भागीरथी अम्मा को मन्दानिल सहला रहा था, तब घर के मालिक घर आये। चाँदनी को भी लज्जित करने वाले हास्य विलास के साथ भागीरथी अम्मा ने पति से कहा,

"बच्ची का हार मिल गया।"

"कहां से ?"

पति का सवाल बिना सुने ही भागीरथी अम्मा ने कहा,—

"हमारा धन ईमानदारी की कमाई का फल है।"

"कहां से मिला ?"

"मेरे भाग्य की चीज़ थी, इसलिये मिल गयी," भागीरथी अम्मा ने कहा।

"उस दिन कैसी अन्याय पूर्ण बातें मुंह से निकाल रही थीं ? क्या वे अब वापस ली जा सकती हैं ? कैसे मिला, कहां मिला ?" पणिक्कर ने अधीरता प्रकट करते हुए कहा।

"इनसारियल के पेड़ पर से एक ओला* गिरा था और उसके पास ही माला पड़ी थी"—

पणिक्कर ने अपने को रोकते हुए कहा,—

"ओले के साथ माला ?"

"उस लड़के ने माला को कहीं छिपा कर रख दिया था। हमारे भाग्य से कौआ उसे लेकर उड़ गया होगा और ओले पर रख दिया होगा। ओले के गिरने के साथ-साथ माला भी नीचे आ गयी"—

"भाग्य से !! .....पिशाचिन कहीं की ..... यह क्यों नहीं कहती कि 'दुर्भाग्य से' !!"

---

* नारियल का डंठल जिस में पत्ते लगे रहते हैं।

———

पुनर्मिलन

उस दिन बालचन्द्र रोज़ की अपेक्षा पहले उठा। आँखें मलता हुआ वह कमरे के बाहर चला आया।

पौ फट चुकी थी। पूरब में उदय होते हुए बालसूर्य की किरणें उस छोटे घर के छप्पर पर प्रकाश फैला रही थीं।

बालन की मां घर के खुले बरामदे में पूरब की ओर मुंह करके हाथ जोड़े हुए बैठी है। बालन ने मां को ओर देखा। उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे।

बालन के दिल को धक्का लगा। वह धीरे-धीरे मां के पास गया और घुटने के बल बैठकर अपने दोनों हाथ से मां के कपोल को सहलाते हुए पूछा, "मां, तुम रो रही हो?"

बालन को देखकर मां ने अपने आंसूओं को रोकने की कोशिश की। लेकिन उसका फल इसके उलटा हुआ। बालक का सवाल सुनते ही उनके आंसुओं का बांध टूट गया। अपने लाड़ले के सिर पर हाथ फेरती हुई उसने कहा, "बेटा, तुम्हारी ही बात सोच-सोचकर मैं दुखी हो रही हूँ।"

"मेरी बात?" बालन ने उत्कण्ठा-पूर्वक पूछा। "मां को रुलाने वाली ऐसी कोन-सी गलती मैंने की है?"

"तुमने कोई गलती नहीं की है, बेटा।" आंखें पोंछती हुई मां ने जवाब दिया। "अपनी गरीबी के कारण तुम्हें इस तरह भूखा रखना पड़ रहा है। इससे मेरा कलेजा फट रहा है।"

बालचन्द्र की समझ में अब बात आ गई। गरीबी क्या है, उसके खिलाफ मां कैसे लड़ रही है, ये सब बातें बालचन्द्र थोड़ा बहुत समझ गया था। लेकिन उसकी मां एक-एक दिन कितनी

मुश्किल से गुज़ार रही थी, इसका बालन को पता नहीं था। बेचारा! वह कैसे यह समझ सकता था। उसका अभी बारहवां साल भी तो पूरा नहीं हुआ था।

कौमारावस्था में प्रविष्ट किये हुए उस सलोने बालक से सहज ही सभी आकर्षित होते थे। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और जोशीले स्वभाव के कारण वह सबों का प्यारा बन गया था। और उसके विनम्र व्यवहार की सब तारीफ करते थे।

बहुत देर तक बालन ने कोई जवाब नहीं दिया। कई प्रकार के विचार उसके बाल हृदय में आये और गये। अन्त में एक दृढ़ स्वर में लड़के ने कहा, "मां, रोओ मत। मैंने एक उपाय सोच लिया है। ज़रा उसके अनुसार कोशिश करके देखूँ। मैं चाहता हूँ कि ऐसी कोशिश करूँ जिससे तुम्हें कम-से कम मेरी तो चिन्ता न करनी पड़े।"

जिस बात को मां बहुत दिनों से अपने लड़के से कहना चाहती थी, वही बात आज लड़के ने मां से कही। लेकिन उसे सुनकर दुख ही हुआ कि उनके प्राणों से प्यारे बच्चे को अब दूसरों के यहां नोकरी करनी पड़ेगी। यह कैसी विधि विडम्बना है कि पालश्वेरी घराने के एकलौते बेटे को जिसकी ज़मीनदारी की धाक आज भी बिलकुल मिटी नहीं है, अपने गुज़ारे के लिए किसी के यहां नौकर का काम करने पर मजबूर होना पड़े। इसका ख्याल मां के हृदय को कचोटने वाला था। लेकिन इसके सिवा दूसरा चारा ही क्या था? भूखा मरने से तो यह बेहतर ही होगा।

मां का असहनीय दुख आंखों से आँसू के रूप में बांध तोड़ कर फिर प्रवाहित हुआ। उन्होंने बालन को गले लगाकर कहा, "बेटा अगर मैं एक शाम भी तुम्हें भरपेट खाने के लिए कुछ देने की हालत में रहती तो तुम्हें दूसरों के यहां काम करने को भेजने के लिए कभी तैयार ना होती। बहुत सोचने पर भी मुझे

और कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। आज तुम्हें खाने के लिए क्या दूँगी, इस विचार से रात भर मुझे नींद नहीं आयी।"

बालचन्द्र भी रोने लगा। मां से अलग कहीं दूर जाकर रहने का ख्याल, अपनी कमाई से थोड़ा बचाकर मां को भी कुछ न कुछ दे सकेगा कि नहीं, यह सवाल, यदि बचा नहीं सकेगा तो मां के भूखी पड़े रहने का डर, इन्हीं विचारों से उसका बाल हृदय छट-पटाने लगा। आखिर अपनी रुलाई को किसी तरह थोड़ा रोककर उसने कहा, "मां, पहले तो मैं मामा के यहां जाऊँगा। वहां जरूर वे लोग मुझे रहने देंगे। मैं वहां कुछ न कुछ काम करता रहूँगा। मुफ्त में मुझको खिलाना तो पड़ेगा नहीं। यदि वहां लोग जगह नहीं दें तो भी कहीं और जगह काम खोजने की जरू-रत पड़ेगी।

मां का हृदय फिर विचारों के संघर्ष का केन्द्र बन गया। जब उन्होंने अपने उस भाई के बारे में सोचा जिन्होंने ऐसी निस्सहाय अवस्था में भी अपनी बहन या भांजे की खोज खबर नहीं ली, तब उनका हृदय शोक और क्षोभ से विह्वल हो गया। अपने प्राणों से बढ़कर प्यारे लड़के को उस आदमी के पास कैसे भेजें, जिस की निष्ठुरता को देखकर मन में कटुता का भाव उत्पन्न हो गया था। उनके दिल में आत्माभिमान जाग उठा। लेकिन नहीं भेजे तो क्या होगा? वह परेशान हो गयीं।

तिस पर उनकी संकुचित-हृदय वाली गर्वीली भाभी। उसके साथ अपने लड़के को रहने देने के बदले भूखों मरने देना ही ज्यादा ठीक लगा। ओह, कितने तिरस्कार के साथ वह अपने ससुराल के बारे में बातें करती थी। अपनी सब ननद और उनके बच्चे के साथ उसने कैसा निकृष्ट व्यवहार किया है।

फिर भी आज की स्थिति में भैया, बालन को नहीं त्याग देंगे। ऐसा उनका विश्वास था। उन्होंने सोचा कि और कहीं जाकर काम

करने की अपेक्षा भैया के यहां ही गुलामी करे तो अच्छा है।

"मां, मैं अब जा रहा हूँ। दो तीन दिन के बाद आऊँगा।" बालन के इन शब्दों ने मां की विचार तल्लीनता भंग कर दी। उन्होंने बालन के सिर को चूमते हुए कहा, "मेरे लाल, तुम्हें इस तरह खाली पेट ही भेजना पड़ रहा है।"

"कुछ परवाह नहीं, मां। धूप तेज़ होने के पहले ही मैं वहां पहुँच जाऊँगा।"

दोनों उठ गये। मां अपने भूखे और फटाचिटा एक छोटा कपड़ा पहने बेटे को बिदा करने के लिए फाटक तक आई। और आँसू बहाते हुए उसका आंखों से ओझल होना देखती रहीं। वह विचारमग्न हो वहाँ तब तक खड़ी रहीं जब तक सूरज की किरणों ने अपनी तीक्ष्णता से चढ़ते हुए दिन की याद नहीं दिलायी।

❀ ❀ ❀

जानकी अम्मा का इस स्थिति में पड़ना भाग्य का ही खेल है। धन और कुलीनता की दृष्टि से उनका जन्म पालश्वेरी नाम के एक पुराने प्रसिद्ध घराने में हुआ था। जानकी अम्मा के मामा एक प्रभावशाली तहसीलदार थे। अपने घराने की इज्ज़त और शान बनाये रखने के लिये दिल खोलकर खर्च करने वाले थे।

जानकी अम्मा जब सत्रह साल की थीं तब उनका ब्याह हुआ। उनके पति को कोई नौकरी तो नहीं मिली थी, लेकिन वे बी० ए० पास थे। नवदम्पति के दिन प्रेम और आनन्द से कटने लगे। पति अपनी सुशील और सुन्दर पत्नी पर जान देते थे तो पत्नी पति को देवता मानकर उन पर निछावर थी।

एक साल बीतने पर जानकी अम्मा को मातृत्व का गौरव भी प्राप्त हो गया। पुत्र बड़ा सुन्दर और चित्त प्रसन्न करने वाला था। उनके पति करुणाकरन नायर ऐसा रत्न पाकर आनन्द में सब कुछ भुला बैठे। शिशु को हमेशा गोद में लिये खेलाते रहते

थे। और जानकी अम्मा फूली नहीं समातीं थीं।

इस तरह बहुत दिन बीते। घर के मालिक के मन में करुणाकरन नायर के प्रति नाखुशी बढ़ने लगी। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा कि करुणाकरन नायर ससुराल में पड़े-पड़े अपना गुज़ारा करें और किसी काम में लगने की कोशिश भी न करें। वे इधर-उधर नायर की निन्दा करने लगे। जब करुणाकरन नायर के कान तक निन्दा पहुंची तब उनके आत्माभिमान को ठेस लगी। अपने वचन और व्यवहार से अपना प्रतिरोध भाव भी प्रकट करने लगे। उधर गृह स्वामी का तिरस्कार भाव घृणा में परिणत हो गया। वे नायर को उनके सामने ही डांटने, नीचा दिखाने और भला बुरा कहने लगे।

गृह स्वामी का ऐसा व्यवहार उस युवक को अत्यन्त अप्रिय लगा। इस प्रकार डांट फटकार सहने के लिये वह तैयार नहीं था। इसका नतीजा यह हुआ कि करुणाकरन नायर और जानकी अम्मा के दाम्पत्य जीवन पर कुठाराघात हो गया। पति-पत्नी एक साथ नहीं रह सके। एक दिन करुणाकरन नायर अपनी प्यारी पत्नी और प्यारे बच्चे को छोड़कर चले गये। उसके बाद किसी ने उनकी छाया तक नहीं देखी।

उन दिनों तहसीलदार के विरुद्ध ज़िला अदालत में एक मुकद्दमा चल रहा था। वादी एक बड़ा जबर्दस्त आदमी था। इस मुकद्दमे में जीतना तहसीलदार की इज्ज़त के लिये बहुत ज़रूरी था। इसलिये उन्होंने इसके लिये खूब धन खर्च किया। धन खर्च हो जाने पर ज़मीन जायदाद तक बेचकर रुपये इकट्ठे किये और मुकद्दमा लड़ते रहे। पर अन्त में अदालत का फैसला उनके खिलाफ हुआ। इस मुकद्दमेबाज़ी के कारण उनके एक छोटे घर के अलावा और कुछ नहीं बचा।

तहसीलदार के इकलौते भांजे शंकर पिल्ला, जो जानकी

अम्मा के भाई थे, मुंसिफी अदालत में एक वकील थे। उन्हें डर था कि मामा की मुकद्दमेबाज़ी उनकी बहन को निराधार बना देगी। इसलिये उन्होंने बहुत कोशिश की कि मामा वादी से समझौता कर लें। लेकिन उनकी सारी कोशिश व्यर्थ हुई। मामा ने उनकी मानने से इनकार कर दिया। वे अपने दुराग्रह पर डटे रहे। शंकर पिल्ला ने उनसे निराश और खिन्न होकर शपथ खाई कि आगे वे अपने कुटुम्ब वालों से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे।

मुकद्दमे में हार जाने के बाद कुटुम्ब की स्थिति दिनों दिन बिगड़ने लगी। लेकिन शंकर पिल्ला ने उस तरफ से अपनी आंखें फेर लीं। ऐसा करने के लिये एक और बात बड़ी सहायक सिद्ध हुई।

उनकी पत्नी देवकी अम्मा बड़ी स्वार्थी स्त्री थी। रुपया ही उनका देवता था। रुपये की आराधना ने उनके हृदय के दया-धर्म आदि सुन्दर भावों को नष्ट कर दिया। जब उन्हें मालूम हुआ कि पति को अपनी मां के घर से कुछ पाने के लिये नहीं रह गया, तब उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि पति की कमाई की एक कौड़ी भी वे उस तरफ नहीं जाने देंगी और पति के मन को भी इस सम्बन्ध में मज़बूत कर दिया।

शंकर पिल्ला के दिल में पति से त्यागी अपनी दुःखी बहन की थोड़ी बहुत मदद करने की जो भावना थी उसे भी देवकी अम्मा ने निर्मूल कर दिया। उन्होंने अपनी ननद के बारे में कुछ निन्दायें इस रहस्यपूर्ण रीति से उनके कानों तक पहुँचा दीं कि उसका आभास मात्र उनके अभिमानी मन को बहन की तरफ से खींच लेने के लिये काफी था। देवकी अम्मा ने सहोदर-सहोदरणी के शाश्वत मधुर बन्धन को नष्टप्राय कर दिया।

तहसीलदार अपने कर्मों का फल भोगने के लिये अपनी भांजी और उसके दुलारे पुत्र को घर में निस्सहाय स्थिति में छोड़कर

मर गये। शंकर पिल्ला ने मामा के दाहकर्म आदि में नाममात्र का भाग लेकर अपने कर्तव्य की इति समझ ली। बहन और छोटे भांजे के बारे में कुछ पूछताछ नहीं की।

❀ ❀ ❀

उस गांव से पांच मील की दूरी पर शहर बसा है। शहर की बाहरी सीमा पर वकील शंकर पिल्ला का सुन्दर घर है।

बालन सवेरे दस बजे के पहले ही घर के फाटक पर पहुँच गया। नये परिष्कृत ढंग से बने उस मकान को उसने पहले भी देखा था। फिर भी आज वह घर पहले की अपेक्षा अधिक आकर्षक मालूम हुआ। मकान के सामने सफेद बालू बिछा हुआ था और प्रांगण में तरह-तरह के फूलों के पौधे लगे हुए थे जिससे सारा स्थान बड़ा रमणीय मालूम होता था।

वह छुट्टी का दिन था। वकील साहब के बच्चे कृष्णन कुट्टी और राधा, दोनों घर पर ही थे।

कृष्णन कुट्टी ने बालन को फाटक के पास आते देखा। "कौन, बालन ?" कहते हुये वह दौड़कर बालन के पास पहुँच गया। बालन कृष्णन कुट्टी के सौहार्दपूर्ण स्वागत से बहुत खुश हुआ। उसका शरीर पुलकित हो गया। कृष्णन कुट्टी अपना आनन्द प्रकट करते हुये उसका हाथ पकड़कर उसे घर के भीतर ले गया।

कृष्णन कुट्टी ने बालन के आगमन को एक बड़ी खुशी का अवसर माना। और हँसी खेल की बातचीत शुरू करके उस अवसर को और भी आनन्ददायक बना दिया।

इन दोनों का ज़ोर-ज़ोर से बोलना और हँसना सुनकर राधा भी वहाँ पहुँच गयी। राधा ने बालन को एक बार पहले देखा था। लेकिन अपने भाई को उसके बारे में कुछ न कुछ कहते कई बार सुनचुकी थी। उसी बालन के अकस्मात् अपने घर में आ जाने से उसे भी बहुत खुशी मालूम हुई।

तीनों बच्चे मिलकर इस तरह खुशी प्रकट करने लगे मानों कोई उत्सव मना रहे हों। उनकी हँसी खुशी और बातों से घर के एक हिस्से में काफी शोरगुल मच गया।

हल्ला सुनकर देवती अम्मां बच्चों के पास आयीं। अपने बच्चों के साथ एक नये लड़के को देखा। कोमल मुखमण्डल रखते हुये भी बालक का वेश जैसा था उससे देवकी अम्मा को लगा कि वह उनके बच्चों से इस तरह हिल-मिलकर बातें करने का अधिकारी नहीं था।

देवकी अम्मा ने गुस्से में दांतों से अपना होंठ दबाया और आंखें तरेर कर कृष्णन कुट्टी से पूछा, "यह कौन है ?"

माँ का यह सवाल सुनकर कृष्णन को आश्चर्य हुआ। वह बोला, "माँ, तुम बालन को नहीं पहचानती ? वुआ का बेटा।"

यह बात नहीं कि देवकी अम्मा ने लड़के को पहचाना नहीं। असल में लड़के के बारे में अपनी जानकारी प्रकट करना भी उन्होंने अपने लिये एक अपमान की बात समझी। इसलिये नहीं पहचानने का ही भाव प्रकट किया। उन्होंने बालन को सिर से पाँव तक गौर से देखते हुए कहा, "क्यों, तुम यहाँ क्यों आये हो ?"

बालन के उसके घर में आने से उन्हें जो अप्रसन्नता हुई उसे उन्होंने उस एक छोटे से सवाल के रूप में पूरा-पूरा व्यक्त कर दिया। उनके सवाल ने बालन के हृदय को भेद दिया। उसको मालूम हो गया कि मामी को उसका आना पसन्द नहीं पड़ा। उसके हृदय में एक तरह का डर और सन्देह पैदा हो गया। वह अपने को सम्भालते हुए नम्रता से बोला, "मामाजी से मिलने के लिये आया हूँ।"

देवकी अम्मा ने अनुमान किया कि लड़का मामा से जरूर कुछ ठोस मदद मांगने के लिये आया है। उन्होंने मन ही मन

निश्चय कर लिया कि जब तक रहेंगी तब तक अपने घर से उन लोगों के लिये एक पैसा भी नहीं जाने देंगी। यह सोचने लगीं, क्या यह ठीक होगा कि इस भिखारी लड़के को अभी लौटा दिया जाय ?—नहीं, उसके मामा आ जायँ और जो कुछ कहना है उन्हीं से कहलवा देना अच्छा होगा। बालन से और कुछ बोले बिना वे रसोई घर में चली गयीं।

बालन के प्रति मां का नीरस भाव और निष्ठुरता पूर्ण व्यवहार देखकर कृष्णन के दिल को बहुत चोट लगी। पहले उसने सोचा कि जब मां समझ जायेंगी कि वह बुआ का लड़का बालन ही है तब वह उसका प्रेम से स्वागत करेंगी। लेकिन उसकी आशा के ठीक विपरीत हुआ। मां का व्यवहार देखकर उसका बाल हृदय अनिवर्चनीय वेदना से विह्वल हो उठा।

"बाला, तुमने क्या खाया है ?" उसके गले में हाथ डालते हुए कृष्णन ने पूछा। बालन ने कुछ खाया तो था नहीं; उसने बात साफ-साफ कह दी। उसकी बात सुनकर कृष्णन और राधा दोनों आश्चर्य में पड़ गये। उस समय तक भाई-बहन दो बार नाश्ता कर चुके थे और मध्याह्न भोजन के समय उनके तीसरी बार खाने का समय हो रहा था।

"कुछ भी नहीं खाया है ?" कॉफी तक नहीं पी है ?" राधा ने आतुरता से पूछा।

"नहीं।" इस जवाब में एक लाचारी की ध्वनि थी।

कृष्णन झट मां के पास दौड़ गया। मां रसोई घर के काम में लगी थीं। मां से लिपटते हुये उसने कहा, "मां, बालन को कुछ खाने को दे दो। उसने अभी तक कुछ नहीं खाया है।" "हां-हां", गुस्से में मां ने कहा, "कहीं से दौड़े-दौड़े आने वाले को खाना बनाकर खिलाने के लिये ही मैं बैठी हूँ न ?" "मां, वह हमारी बुआ का लड़का है न ? आज उसने अभी तक कुछ नहीं खाया है।"

कृष्णन के ये शब्द किसी के भी हृदय को द्रवीभूत किये बिना नहीं रह सकते थे। लेकिन उसकी मां का गुस्सा इससे और भी बढ़ गया। कृष्णन की तरफ घूमकर उन्होंने बड़ी रुखाई से कहा, "इसमें मेरा ही दोष है? आओ, तुम अपना काम देखो। नहीं तो।"

देवकी अम्मा का यह जवाब बालन ने भी सुना। उसका दिल टूक-टूक हो गया। मामा के घर में उसे शरण मिलेगी, यही आशा लेकर वह अपने घर से चलकर वहां आया था। देखते-देखते उसकी आशा निराशा में परिणत होने लगी। स्वप्न भंग होने लगा।

कृष्णन बालन के पास आया। उसका चेहरा उतरा हुआ था। उसे देखकर बालन को और भी दुख हुआ। उसके कारण कृष्णन जैसे सुखी लड़के को भी दुखी होना पड़ रहा है। यह सोचकर वह भीतर ही भीतर उद्विग्न हो गया।

"कृष्णन, मामाजी कब तक आयेंगे?" बालन ने निराश-भाव से उसकी ओर देखते हुये पूछा। कृष्णन भावों के घात प्रति-घात के कारण कुछ इस तरह अन्यमनस्क-सा हो रहा था कि वह बालन के सवाल को सुनकर भी कुछ जवाब नहीं दे सका। खड़ी-खड़ी सब बातें ध्यान से सुनती रहने वाली छोटी राधा ने कहा, "पिताजी शाम तक ही कचहरी से लौटेंगे। बाला, क्यों आज कुछ नहीं खाया है?"

बालन ने जवाब दिया, "घर में खाने के लिये कुछ था ही नहीं। कल भी मैंने एक ही शाम भोजन किया। मैं कोई भी काम करने के लिये तैयार हूँ। बदले में खाना मिले तो बस होगा। मामा से ही कहने के लिये मैं यहां आया हूँ।"

बालन उस घर में रहने के ख्याल से आया है, यह जानकर कृष्णन और राधा को बहुत हर्ष हुआ। उसके वहां एक नौकर

बनकर रहने में जो असुख की बात थी उस ओर उनका ध्यान नहीं गया। बालन का आगे बराबर साथ मिलता रहेगा, इस बात से भाई-बहन बहुत आनन्दित हुये। कृष्णन का उदास चेहरा खिल उठा। उसने पूछा, "सुन ? तुम हमेशा यहीं रहोगे बाला ?"

"अगर मुझे रखें तो", बालन ने सन्देह भरे स्वर में उत्तर दिया।

कृष्णन और राधा फिर मां के पास गये। दोनों ने बालन के आने का उद्देश्य उनको कह सुनाया। सरल हृदय बच्चों ने सोचा कि बालन की इच्छा का मां तिरस्कार नहीं करेंगी। लेकिन भला देवकी अम्मा बालन का उस घर में रहना क्यों कर पसन्द करतीं। उल्टे, उसके आने का उद्देश्य सुनकर उनका गुस्सा और बढ़ गया और हाथ में जो बर्तन था उसे जमीन पर फेंकते हुये वह उठीं और कृष्णन को हटाती हुई बोलीं, "कहां है वह ?"

बालन सामने आकर खड़ा हो गया। उसने देखा—कहाँ तो उसे मामी के वात्सल्य की छाया में रहने की आशा थी और कहीं मामी एक साक्षात राक्षसी के रूप में उसके सामने खड़ी थीं।

"रे, तू जा अपने घर या जहां तेरा मनचाहे वहां जा। यहां तेरी जरूरत नहीं है। जा, जल्दी यहां से चला जा", हाथ से फाटक की तरफ इशारा करते हुए और अपनी ठुड्डी हिलाते हुये उन्होंने चिल्लाकर कहा।

बालचन्द्र की सारी आशा पर पानी फिर गया। उसका शरीर मानों निष्प्राण हो गया। भूखा प्यासा तो था ही। मामी के शब्दों से उसे ऐसा धक्का लगा कि उसने बैठ जाना चाहा। लेकिन मामी की आज्ञा के विरुद्ध वैसा करने की हिम्मत नहीं हुई। दुख, क्षोभ और निराशा से वह व्याकुल हो गया। अब कहां जाय ? उसकी आंखों से आंसू झरझर गिरने लगे। उसने समझ लिया कि वहां ठहरने से कोई फायदा नहीं होगा। कृष्णन और राधा वहां नहीं

थे। मां के डर से दोनों बच्चे वहां से टल गये थे। उसके सामने सिर्फ मामी की डरावनी सूरत थी। उसने लौट जाने का निश्चय किया और घर से बाहर निकल गया।

वह जाने के पहले कृष्णन और राधा से विदा लेना चाहता था। फाटक पर पहुँचकर पीछे मुड़कर देखा। कृष्णन और राधा दोनों खड़े-खड़े उसकी ओर कातर भाव से ताक रहे थे। मन में इच्छा हुई कि उन्हें पास बुलावे। फिर सोचा नहीं, कहीं फिर मामी आ जायें तो·····।

बालन फाटक से बाहर हो गया। आगे बढ़ता गया। कहां जायगा? कहां उसे शरण मिलेगी? कुछ मालूम नहीं। वह इतना ही जानता था कि उसे अपने घर नहीं लौटना है। उसने सुना है, शहर में लड़कों को नौकरी मिल जाती है। उसके गांव के कई लड़के शहर में चाय की दूकानों में नौकरी करते हैं। उसे भी कहीं कोई नौकरी मिल ही जायगी।

कड़ी धूप, असह्य गर्मी, भूख, प्यास, अपमान और निराशा, एक साथ इतने कष्टों को वह कोमल बालक कब तक सहन कर सकता था? मानसिक दुख के बोझ और शारीरिक थकावट के कारण उसने एक कदम भी आगे बढ़ने से अपने को लाचार पाया। सड़क के किनारे एक छायादार पेड़ के नीचे थोड़ा आराम कर लेने के विचार से बैठ गया। बैठते ही उसकी आंख लग गयी। तुरन्त ही एकाएक उसको किसी का स्पर्श अपने शरीर पर मालूम हुआ। वह चौंककर उठ बैठा। देखता क्या है कि कृष्णन कुट्टी पास में बैठा हुआ है।

आश्चर्य और घबराहट के स्वर में उसके मुंह से निकल पड़ा, कृष्णन कुट्टी?" और वह रो पड़ा। कृष्णन कुट्टी भी अपने को रोक नहीं सका। वह भी रोने लगा। साथ-साथ के रुदन और अश्रुपात ने दोनों के हृदयों के स्नेह को प्रकट ही नहीं किया वरन्

उसे और भी दृढ़ बना दिया।

जब रुलाई ज़रा कम हुई तब कृष्णन ने बालन का हाथ पकड़ कर कहा, "बाला, अब तुम कहां जाओगे ?"

आंसू पोंछते हुये बालन ने कहा, "बाज़ार में" "वहां जाकर क्या करोगे ?"

"कोई नौकरी ढूंढूँगा।" दोनों फिर मौन हो गये। जब तक कृष्णन कुट्टी को बालन की स्थिति काफी समझ में आ गयी थी कि वह इस उधेड़बुन में पड़ा था कि उसे खुद क्या करना चाहिये। वह बालन के लिये क्या कर सकता है ?

"बाला, तुम भूखे हो न !" कृष्णन ने कहा।

"कोई परवाह नहीं, "अपनी भूख की तीव्रता को छिपाते हुए बालन ने जवाब दिया।

कृष्णन ने फिर पूछा, "तुम्हारे पास कुछ पैसे हैं या नहीं।"

बालन ने कोई जवाब नहीं दिया। क्या जवाब दे और जवाब देकर कृष्णन की चिन्ता को और भी क्यों बढ़ावे।

"बाला, मैंने घर में सब जगह ढूँढा। लेकिन मुझे कहीं एक पैसा भी नहीं मिला। बिना पैसे के बाज़ार में जाकर क्या करोगे ?"

"यह तो बाज़ार पहुंचने पर ही तय करूंगा।" बालन ने जवाब दिया मानों उसकी दृष्टि में यह कोई महत्वपूर्ण बात नहीं थी।" कृष्णन, तुम जल्दी लौट जाओ। मामी तुम्हें खोजेंगी।

कृष्णन ने अपनी उंगली से अंगूठी निकाली और बालन की ओर बढ़ाते हुए कहा, "बाला, लो, इसे बेचकर तुम कहीं भोजन कर लेना।"

बालन सचेत हो गया। वह डर गया और घबराकर बोला, "नहीं-नहीं कृष्णन, अंगूठी नहीं चाहिये।"

"इसे ज़रूर लेना होगा। नहीं तो तुम्हें बहुत कष्ट होगा बाला।"

बालन ने निश्चयपूर्वक कहा, "नहीं कृष्णन, मैं अंगूठी नहीं लूंगा। मुझे यह नहीं चाहिये। मामा और मामी जान जायेंगे तो ..... ।"

कृष्णन कुटट्टी उठकर खड़ा हो गया। "न, मैं और कुछ इस समय नहीं कर सकता। यह अंगूठी तुम्हें लेनी ही होगी। मैं अब जाता हूँ" कहते हुए अंगूठी बालन की गोद में डालकर कृष्णन वहां से दौड़ गया।

बालन अंगूठी लेकर खड़ा हो गया। उसे डर समा गया था और उसके हाथ कांप रहे थे। "कृष्णन, यह लेते जाओ। "कहते हुये वह कृष्णन के पीछे दौड़ा।

बालन को पीछे-पीछे आते देखकर कृष्णन चिल्लाया, "इधर मत आओ। अम्मा देख लेंगी।"

बालन मामी का नाम सुनते ही खड़ा हो गया। उसे लगा अंगूठी लेकर उस घर में फिर जाने से बेचारा कृष्णन संकट में पड़ जायगा।

अंगूठी लेकर वह बाज़ार में कैसे जाय? उसे अपने पास रखना भी खतरनाक है। उसे बेच तो सकता नहीं। उस पर उसका कोई अधिकार नहीं है! घर में अंगूठी की खोज होगी ही। बात प्रकट हो जाने पर मामी बेचारे कृष्णन को कितना पीटेगी। इन सारी चिन्ताओं से बालन की व्याकुलता बढ़ गयी।

अन्त में निश्चय किया कि अंगूठी लेकर वह मामा के घर नहीं जायगा साथ ही यह निश्चय किया कि चाहे भूखों मरना भी पड़े तब भी वह अंगूठी नहीं बेचेगा।

अपने कपड़े के एक छोर में उस अंगूठी को बालन ने बांधकर भीतर खोंस लिया और जैसे भी हो, उसकी रक्षा करने का निश्चय करके वह आगे बढ़ा।

दोपहर का समय है। कृष्णन कुट्टी कुछ भोजन करने बैठा

है। उसकी मां ने उसकी अंगुली में अंगूठी नहीं देखी। एक घबराहट के साथ पूछ बैठीं," "तुम्हारी अंगूठी कहां है, कृष्णन ?"

कृष्णन कुट्टी इसके लिये तैयार नहीं था। इतनी जल्द बात पकड़ी जायगी इसकी उम्मीद उसे नहीं थी। वह तो किसी तरह बालचन्द्र की मदद करना चाहता था। और उसको अंगूठी देकर भाग आया था। उसका नतीजा क्या होगा, इसके बारे में कुछ सोचा ही नहीं था।

मां का सवाल सुनकर उससे कुछ जवाब देते नहीं बना। मां का गुस्सा और सन्देह बढ़ा। परोसे हुए भोजन पर से उसे उठाकर अपना सवाल दुहराया, "कृष्णन कुट्टी', कहो, कहां है तुम्हारी अंगूठी ?" कृष्णन कुट्टी के पांव तले ज़मीन धसती हुई मालूम पड़ी। किसी तरह धीमी आवाज़ में उसके मुँह से निकला, "सो गयी।"

मां को विश्वास नहीं हुआ। उनका सन्देह बढ़ गया। वे आवाज ऊँची करके और भी कड़ाई के साथ बोलीं, "झूठ, बिलकुल झूठा, मैं जानती हूँ, अंगूठी कहां गयी है। जल्दी सच-सच बता दो। यही अच्छा होगा।"

कृष्णन चुपचाप खड़ा रहा। उसकी चुप्पी देखकर मां अपने को रोक नहीं सकी। वे ज़रा आगे बढ़ीं और यह कहते हुए कि "जल्दी बताता क्यों नहीं ?" कृष्णन को एक तमाचा मार दिया।

कृष्णन ने सचसच कह देना ही ठीक समझा। मन में यह भाव उठते ही उसे एक बल और उत्साह का अनुभव हुआ। वह दृढ़स्वर में बोला, "अंगूठी को मैंने बालन को दे दिया है। उसके पास एक भी पैसा नहीं था। कल से ही बेचारा भूखा था। मैंने उसे कहा है कि अंगूठी बेचकर कुछ खरीदकर खा ले।"

बेटे की बात सुनकर देवकी अम्मा में जो प्रतिक्रिया हुई उस का क्या कहना। बालन और उसकी मां को गालियां दीं और

कृष्णन कुट्टी को निर्दयतापूर्वक पीटा। इतना ही नहीं यह कहते हुए उसे घसीटकर कमरे में बन्द कर दिया कि पिता के आने पर उसे एक अच्छा सबक सिखाने के बाद ही खाना दिया जायेगा।

फिर थोड़ी देर खड़ी-खड़ी कुछ सोचती रहीं। तब पड़ोस के एक घर में गयी। वहां से एक आदमी को वकील साहब को बुला लाने के लिये कचहरी भेज दिया।

वकील शंकर पिल्ला घबड़ाये घर पहुँचे। उनके चेहरे और भावभंगी से प्रकट हो रहा था कि उन्हें किसी भारी आफत की आशंका थी।

घर के पास आते ही पुकारा, "देवू, देवू" देवकी अम्मा भीतर से आवाज़ देती हुई अपने को और भी गम्भीर और उदास बनाये पति के सामने आकर खड़ी हो गयीं।

"क्या हुआ है? क्यों बुलाया है?" घबराहट और अधीरता के स्वर में वकील साहब ने पूछा।

देवकी अम्मा ने जवाब दिया, "क्या हुआ है? सुनिये, बतलाती हूँ। बच्चों का ठीक से पालन होना चाहिये। बाहर से आने वाले भिखमंगे लड़कों के साथ बच्चों को आज़ादी के साथ खेलने नहीं देना चाहिये था। पालरशेरी का वह लड़का है न। क्या है उसका नाम? बालन। आज वह यहां आया था। और कृष्णन कुट्टी की अंगूठी चुराकर भाग गया है। अब क्या किया जाय?"

"बस, इतनी ही-सी बात है?" वकील साहब ने एक लम्बी सांस लेते हुये कहा। देवकी अम्मा ने सिर्फ जल्दी ही घर आ जाने के लिये खबर भेजी थी। इसलिये वकील साहब किसी संकट की आशंका करके कचहरी बन्द होने के पहले ही, अपना काम अधूरा छोड़कर भागे-भागे घर आये थे। असली बात मालूम

होने पर उनका मन थोड़ा शान्त हो गया। आखिर तीन-चार रतीभर सोना ही तो गया है। पर उनके भांजे ने अंगूठी चुराई है, इसका उन्हें विश्वास नहीं हुआ।

पति ने बात को इतने हल्के तरीके से लिया इससे देवकी अम्मा असन्तुष्ट हो गयीं। उन्होंने कहा, "यह कोई बड़ी बात नहीं है तो उसे बुलाकर घर की बाकी चीजें भी ले जाने को कह दीजिये।"

वकील साहब ने समझाते हुये कहा, "नहीं देवू, उसी ने लिया है, यह कैसे कहा जा सकता है? तुमने सब जगह ढूँढ लिया है?"

देवकी अम्मा ने शिकायत भरी आवाज में कहा, "अच्छा मेरी बात का विश्वास नहीं है तो जाने दीजिये।"

"इसमें अविश्वास की बात ही क्या है? किसी पर चोरी का इलज़ाम लगाना आसान है लेकिन·····।"

देवकी अम्मा ने व्यंग की हँसी हँसते हुए कहा, हां, वह दुलारा-भांजा है न? मैं तो यह बात भूल ही गयी थी! न न, उसने भला चोरी की होगी। सिर्फ सबों की आंख बचाकर लेकर चला गया होगा।" थोड़ी देर के बाद गम्भीरतापूर्वक बोलीं, "अभी खोज की जाय तो अँगूठी शायद मिल भी जाय। लड़का कहीं दूर नहीं गया होगा। करीब आधे 'सावरेन' की अंगूठी है। मैं नहीं चाहती कि वह ऐसे ही खो जाय। कुछ खोज ढूँढ करने का विचार है तो वह तुरंत होनी चाहिये। यह लड़का एक नम्बर का चोर है। उसे पकड़वा कर पुलिस के हवाले कर देंगे तो अँगूठी जरूर मिल जायेगी।"

घर में पत्नी का निरंकुश शासन था। वकील साहब उस शासन में दखल नहीं देते थे। पत्नी की इच्छा के अनुसार काम करना आवश्यक था। अलग-अलग रहने से बहन और उनके

लड़के की स्थिति के बारे में उनको कोई कल्पना नहीं थी। अगर उसने वास्तव में चोरी की है तो इसके बारे में सन्देह ही क्यों किया जाय। .....अब तो उसको और अपनी भलाई के लिये उचित कार्रवाई करना ही योग्य है।"

इस सम्बंध में ज्यादा विचार किये बिना ही वकील साहब जैसे आये थे वैसे ही बाहर चले गये।

❀ ❀ ❀

बाहर चिलचिलाती धूप और भीतर जोरों की भूख और प्यास सहते हुये तथा मामी के तिरस्कार और कृष्णन् कुट्टी के प्यार के विचारों में डूबते उतराते बालचन्द्र इस आशा से बाजार में पहुँचा कि वहाँ उसे कोई काम मिल जायगा और पेट की ज्वाला शान्त करने को खाना भी।

इसके पहले भी बालचन्द्र एक बार वहां गया था। उस समय उसकी स्थिति आज जैसी नहीं थी। भूख और प्यास से वह उस समय आज की तरह तड़प नहीं रहा था। उस समय शहर और बाजार की चित्ताकर्षक सुन्दरता और सजावट देखकर उसे बहुत आनन्द और आश्चर्य हुआ था। लेकिन आज शहर में पांव रखते ही उसकी आंखों के सामने अन्धेरा छा गया और उसके हाथ पांव शिथिल हो गये। अब कहां उसे थोड़ी कंजी पीने को मिलेगी, यही विचार उसके दिल को अधीर कर रहा है।

सड़क की दोनों तरफ उसने बड़े-बड़े अक्षरों में लिखे होटलों के साइन बोर्ड देखे, इच्छा हुई कि किसी एक में अन्दर जाय। फिर एक तरह के संकोच ने उसे अन्दर जाने से रोक दिया। इस संघर्ष में वह बहुत दूर तक चला गया।

अन्त में एक होटल के सामने वह खड़ा हो गया। होटल का मैनेजर एक गौरवर्ण मोटा आदमी मेज के पास कुर्सी पर बैठा था। बालन को लगा कि इस आदमी से वह काम देने को कहे।

शायद यह सहानुभूति दिखावे। ऐसा सोचकर उसने उसके पास जाने का निश्चय किया।

होटल के मैनेजर के सामने वह जाकर खड़ा हो गया। मैनेजर ने गौर से देखा। धूप से कुम्हलाये कोमल चेहरे और फटा-चिटा कपड़ा लपेटे स्वस्थ शरीर वाले उस बालक को कौतूहलपूर्ण दृष्टि से वह देखता रह गया। उसकी आंखों में बालचन्द्र ने एक सहानुभूति की झलक देखी। उसे हिम्मत हुई और थोड़ा और आगे बढ़कर उसने एक-एक कर कुछ कहना शुरू किया। मैनेजर ने इतना समझ लिया कि वह खाने के लिये कुछ चाहता है और कुछ काम मिल जाय तो वह नौकरी करने को तैयार है। मैनेजर ने मुस्कराते हुये कहा, "यहाँ अभी नौकर की तो ज़रूरत नहीं है बच्चा। हाँ, तुम्हें कुछ खाने को मिल जायगा। खाकर चले जाना।"

इसके बाद मैनेजर ने बालन से उसके घर का पता-ठिकाना पूछा और नौकर को बुलाकर उसे खिलाने को कह दिया। नौकर बालन को भीतर ले गया।

करीब एक घण्टे के बाद वह बाहर आया। इस बीच उसे होटल के नौकरों के कई प्रश्नों का उत्तर देना पड़ा और उनसे उसने कई बातें समझ भी लीं। बाहर आते समय उसका चेहरा पहले की अपेक्षा प्रसन्न था। उसकी आंखों में आशा और प्रीति के भाव खेल रहे थे।

मैनेजर से विदा लेने के विचार से वह उनके पास जाकर खड़ा हो गया। वह कुछ लिख रहा था। जब उस पर उसकी नज़र पड़ी तब उसने पूछा, "तुम अब कहाँ जाओगे?"

इसके पहले कि वह जवाब दे, वह आश्चर्य से उस आदमी की ओर देखने लगा जिसने एकाएक वहाँ पहुँचकर ज़ोरों से उसका हाथ पकड़ लिया। वह एक पुलिस का सिपाही था। बालक

का चेहरा सूख गया। सिपाही के साथ एक दूसरा आदमी भी था। बालन ने उनको ध्यान से देखा। वे उसके मामा शंकर पिल्ला ही थे। इतने में मामा पूछ बैठे, "रे, आज तू क्या मेरे घर गया था ?"

सिपाही के हाथ पकड़ने से उसका दिल धड़कने लगा था। लेकिन मामा को पास में देखकर उसे थोड़ा बल मिला। उसने जवाब दिया, "हां", और मामा की तरफ करुण भाव से देखने लगा। होटल के नौकर और दूसरे कई आदमी वहां इकट्ठे हो गए।

हाथ पकड़े-पकड़े सिपाही ने उग्र स्वर से सवाल किया, "तुमने जो अंगूठी चुराई है वह कहां है ?"

सिपाही का सवाल सुनकर बालन की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। उसे ऐसा लगा मानो धमनियों में रक्त संचार एकदम रुक गया हो।

"रे, कहाँ है, वह अँगूठी जो तुमने वकील साहब के घर से चुराई है ?" इस कर्कश प्रश्न के साथ-साथ सिपाही ने बालन की गर्दन पर कसकर एक थप्पड़ लगाया। थप्पड़ खाकर बालन झुक गया और चिल्ला पड़ा, "मामाजी, मुझे बचाइये। अंगूठी मेरे पास है। लेकिन मैंने चोरी नहीं की है।"

"अंगूठी तुमने नहीं चुराई ? तब क्या वह अपने आप तुम्हारे हाथ में चली आई ?" सिपाही ने वकील साहब के बीच पड़ने के पहले ही सवाल किया। "कहां है अंगूठी, निकालो।"

बालन ने पीपल के पत्ते की तरह कांपते और फूट-फूटकर रोते हुये कमर में छिपाई हुई अपने कपड़े के एक छोर की गांठ बाहर कर अपनी उङ्गलियों से गांठ को खोला। शिकारियों को शिकार मिल जाने पर जो खुशी होती है उस खुशी के साथ सिपाही और उसके मामा उसको देख रहे थे। अपने बहते हुए

आंसुओं के बीच बालन ने बारी-बारी से सिपाही और मामा को देखा और अंगूठी को आगे बढ़ाते हुये कहा, "मामाजी, अब मुझे मत पिटवाइये। मैंने यह अंगूठी चुराई नहीं। कृष्णन् मेरे पास फेंक भाग गया। मैं सच कह रहा हूँ। मुझे मत पिटवाइये, मामाजी, मेरे मामाजी।"

चारों ओर भीड़ लग गई। सिपाही ऐसे अकड़कर खड़ा था मानो किसी बड़े चोर को पकड़ा हो। अंगूठी को उलट-पुलट कर देखा और मुस्कराया।

भीड़ में किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। कुछ लोग आश्चर्य प्रकट करने लगे तो कुछ लोग उस बालक को सहानुभूति से देखकर उसके बारे में पूछताछ करने लगे। वकील साहब को छोड़कर वहां और किसी को उस लड़के के बारे में कुछ मालूम नहीं था। वकील साहब बिलकुल मौन थे।

होटल के मैनेजर ने कहा, "ऐ लड़के, अगर मैं तुम्हें अपने यहाँ नौकर रख लेता तो दो ही दिन में मेरा दिवाला निकल जाता न?" एक दूसरे ने कहा, "इतनी छोटी उम्र में अच्छा पेशा शुरू किया है। लेकिन मार खाने के लिये पीठ तो काफी चौड़ी है नहीं।" फिर किसी और ने कहा, "उसके चेहरे से तो विश्वास नहीं होता कि वह चोरी करने वाला लड़का है। बिना सच्चाई जाने कुछ निर्णय देना ठीक नहीं है।"

सिपाही ने कहा, "पांच मिनट में सब बातें निकाल दूँगा। एक ही मिनट में देखा नहीं कि कैसे अंगूठी निकलवा दी। अब तक कहाँ-कहाँ चोरी की है, सब एक-एक करके कहेगा। ज़रा थाने पर पहुँच तो जाय।"

सिपाही की बात सुनकर बालन ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। "हे भगवान् मुझे बचाओ, मेरी अम्मा, मुझे बचाओ। मेरे

मामाजी, मुझे पिटवाइये मत। मैंने अंगूठी नहीं ली। मैंने अंगूठी नहीं चुराई।"

सिपाही गरजकर बोला, "रे, हल्ला मत कर। चलिये वकील साहब, इसे थाने ले चलें।" वह बालन का हाथ पकड़कर चलने लगा। वकील साहब, चुपचाप पीछे-पीछे चले। थोड़ी देर के बाद एक भीड़ के साथ सिपाही बालन को पकड़े थाना पहुँचा।

बहुत देर तक वकील साहब ने सिपाही के साथ एकान्त में बातें कीं। अन्त में सब बातों का विवरण लिखकर बालक पर चोरी का इलज़ाम लगाते हुये एक दरख्वास्त पर हस्ताक्षर कर दिया और थाने के इनचार्ज को दे दिया। इन्स्पैक्टर साहब उस समय वहाँ नहीं थे।

वकील शंकर पिल्ला ने सिपाही को कुछ पैसे दे दिये और थाने से चल पड़े। बालन अपने मामा को, उसे थाने में छोड़कर जाते देखकर चिल्ला उठा, "मामाजी, मुझे यहां अकेले छोड़कर मत जाइये। मुझे अपने साथ लेते चलिये। ···यहाँ मुझे मार डालेंगे।" उसका चिल्लाना दिल दहलाने वाला था।

लेकिन कानून के पंडित वकील एक बार घूमे और उनके मुँह से सिर्फ ये शब्द निकले "तुम आज यहीं रहो। तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा।"

वकील साहब अपने घर की तरफ चले। उनके हृदय में एक तूफान मचा हुआ था। उनका अन्तःकरण ऐसे टीस रहा था मानो कोई बड़ा भारी अपराध हो गया हो।

❀ ❀ ❀

वकील साहब घर पहुँचे। देवकी अम्मा पति की राह देखते हुये बाहर बैठकखाने में ही खड़ी थीं। सायंकाल का जलाया हुआ मंगलदीप जल रहा था। मेज़ पर लालटेन भी जलाकर रख दी गई थी। सारा कमरा प्रकाशमान था।

मेज़ के पास रखी दो कुर्सियों पर कृष्णन् कुट्टी और राधा बैठकर पढ़ रहे थे। उनके पास ही उनकी मां खड़ी थीं। पिता के आने की आहट सुनकर कृष्णन् ने एक बार सिर उठाकर उनकी तरफ देखा। फिर अपनी किताब पर दृष्टि गड़ाकर बैठा रहा। राधा ने पिता के आने के बाद उनके चेहरे पर से अपनी दृष्टि हटाई ही नहीं।

वकील साहब का चेहरा उतरा हुआ था। दिल में हाहाकार मचा हुआ था। एक मानसिक संघर्ष की छाया चेहरे पर साफ अंकित थी।

आते ही वकील साहब ने देवकी अम्मा को सुनाया कि अंगूठी मिल गई है। थाने में है। यह सुनकर देवकी अम्मा का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। बोलीं, "मैंने कहा था न कि जल्दी खोज ढूँढ करने से अंगूठी मिल जायगी। अगर इसमें विलम्ब होता तो वह स्वप्न में भी देखने को नहीं मिलती। उसे कहाँ पकड़ा ?"

वकील साहब पास वाले कमरे में कपड़े बदल रहे थे। वहीं से बोले, "जब मैं पुलिस कान्स्टेबिल के साथ जा रहा था तब उसे एक होटल से निकलते देखा।"

"खाना खाकर, क्यों ?" देवकी अम्मा ने वाक्य को पूरा किया। तब कृष्णन् की ओर इशारा करके बोलीं, "इस बदमाश ने कहा था मुझसे कि उसके पास एक पैसा भी नहीं है। वह भूखा है। उस चोट्टे को यहाँ रखने के लिये ये दोनों मुझसे सिफारिश कर रहे थे। सुना आपने ?"

कपड़े बदलकर वकील साहब बाहर आ गये। उदास तो वे थे ही। कृष्णन् के पास आकर बैठ गये।

देवकी अम्मा ने फिर प्रश्न किया, "तो वह कहाँ है अब ?"

"थाने में," कुछ रुखाई के साथ वकील साहब ने जवाब दिया।

यह सुनकर कृष्णन् चौंक पड़ा। किताब से सिर उठाकर बोल उठा, "वालन थाने में ?" और पिता की ओर देखने लगा। उसकी आंखों से मानो आग बरस रही थी। भय, दुख और तिरस्कार की भावना से वह बेचैन हो उठा।

"कृष्ण !" वकील साहब के अदालती ढंग से शुरू किया, "यह अंगूठी तुम्हारी उङ्गली में थी न ?"

"हाँ, "कृष्णन् ने जवाब दिया।

"यह कैसे उसके पास गई ?"

"मैंने उसे दे दी।"

"क्यों ?"

"क्योंकि उसने कहा कि उसे बहुत भूख लगी है। कल भी उसने भरपेट नहीं खाया था। मां ने उसे कुछ खाने को देने से इनकार कर दिया और उसे घर से निकल जाने को कहा। उसको बिना खाये जाते देखकर मुझे दुःख हुआ। मैं उसके पीछे दौड़कर गया। रास्ते पर एक पेड़ के नीचे उसे सोया पाया। उसे जगाकर उसे अंगूठी देनी चाही। उसने लेने से इनकार किया। तब मैंने उसकी गोद में अंगूठी डाल दी और दौड़कर घर आ गया।"

वकील साहब की आंखों में आंसू आ गये। उनके सिर में चक्कर आने जैसा लगा। उनकी सगी बहन का इकलौता लाड़ला बेटा, उनका ही भांजा उनके खानदान का एकमात्र उत्तराधिकारी, एक छोटा निर्दोष बालक—उस पर ऐसा अन्याय, उसपर चोरी का अभियोग, उस पर पुलिस की मार, वह थाने के कटघरे में बन्दी ! सौ बिच्छुओं के डंक मारने जैसे उन्हें वेदना होने लगी। पत्नी की बातें सुनकर बिना पूछताछ किये, बिना पूरी बातें समझे, उन्होंने कितना बड़ा अमानुषिक काम किया है। दुःख और पश्चाताप की आग में वकील साहब जलने लगे। उनकी बुद्धि

उनका साथ नहीं दे रही थी। उन्हें लग रहा था कि उन्होंने अपने को आग के गड्ढे में ढकेल दिया है।

बहुत समय तक किसी के मुँह से कोई शब्द नहीं निकला। हरेक के दिल में अलग-अलग एक तूफान मच रहा था। किसी में भी कुछ बोलने की ताकत नहीं रही। लेकिन देवकी अम्मा एक विकृत परीक्षा में विजयनी की भांति एक ओर खड़ी थी।

वकील साहब उठकर इधर-उधर टहलने लगे। उनका सिर ग्लानि और लज्जा से झुका था और आंखें क्रोध से लाल हो गई थीं। हाथ की उङ्गलियों को बार-बार तोड़-मरोड़ कर अपनी बेचैनी का प्रमाण दे रहे थे।

उसका मन थाने के आसपास चक्कर काटने लगा। अब क्या उपाय किया जाय? बालन के विरुद्ध अभियोग की जो दरख्वास्त थाने में लिख आये हैं उसके विपरीत अब जाकर सच्ची बात कैसे बतावें—ऐसा करने पर पुलिस वाले उनके बारे में क्या सोचेंगे? सब से बढ़कर वह लड़का मेरा ही भांजा है यह बात प्रकट हो जायगी। वकील साहब किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे।

अंगूठी के बारे में पूछते समय बालन की स्थिति, पुलिस का थप्पड़ खाकर उसका फूट-फूटकर रोना, और "मामाजी, मेरे मामाजी" कहकर आर्त स्वर में पुकारना, फिर थाने में उसे अकेले नहीं छोड़ने के लिये उसकी प्रार्थना—ये सब घटनायें उनके मन के सामने चित्रवत् आती जाती रहीं।

पति के धर्म संकट और उनके मन के दुःख और क्षोभ का थोड़ा अनुमान देवकी अम्मा ने लगाया। उन्हें भय हुआ कि आज की घटना से उनके प्रति पति की प्रीति पर आघात पहुँचना अवश्यम्भावी है। इसके लिये कुछ उपाय करना उन्होंने आवश्यक समझा। वे धीमे स्वर में बोलीं, "मान भी लें कि कृष्णन् कुट्टी ने अंगूठी दे दी, तो भी उसे अंगूठी लेकर चला जाना चाहिये था?"

"छिः, बस करो। तर्क करने चली हो! दुष्टे! मैं तुम्हें देखना नहीं चाहता। चली जा मेरे सामने से" उङ्गली से चले जाने का संकेत करते हुये वकील साहब ने कहा।

भर्त्सना के ये शब्द सुनकर मां और बच्चे एकदम आतंकित हो गये। देवकी अम्मा के दिल को एक जबर्दस्त धक्का लगा। इसके पहिले पति ने कभी भी इस तरह अपना क्षोभ और तिरस्कार प्रकट नहीं किया था। कभी भी इतनी कठोरता नहीं दिखाई थी। उनके आत्माभिमान को गहरी चोट लगी। मन में आया कि कुछ जवाब दें। लेकिन बिना कुछ कहे ही वे वहां से बाहर चली गयीं।

कृष्णन् कुट्टी उठा और अपने बिस्तर पर जाकर गिर गया। उसकी देह ढीली हो रही थी तो दिल बैठा जा रहा था। वह अपने भूखे प्यासे फुफेरे भाई की मदद करने चला था। पर उसने जो काम किया वह ऐसी विपत्ति का कारण बन गया। बालन के इस बड़े अपमान और असह्य दुःख का कारण उसने एकमात्र अपने ही को समझा। उसका कलेजा टूक-टूक हो रहा था। उसकी आंखों से अविरल धारा बहने लगी।

वकील साहब एक आराम कुर्सी पर जाकर पड़ रहे। अनेक घटनायें एक-एक करके उनके मन के सामने आने लगीं और वे एक एक की विवेचना करने लगे।

सात-आठ साल पहले की बातें याद आने लगीं, जबकि वकील साहब छुट्टी के कुछ दिन अपने घर (पालश्शेरी) में बिताने के लिये अपनी पत्नी को लेकर वहां गये थे। वहां उनकी पत्नी ने जानकी के विरुद्ध क्या-क्या बातें उन्हें सुनायीं और उसके साथ सम्बन्ध तुड़वाने के लिये कैसा षडयन्त्र रचा जिसमें वह पूर्णतः सफल हुई। उन बातों की याद से पत्नी के प्रति उनका क्रोध और भी बढ़ गया।

कृष्णन् कुट्टी से सब बातें सुनकर उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि उनके इकलौते भांजे, उनके कुल के एकमात्र उत्तराधिकारी के साथ उनकी पत्नी ने कैसा दुष्ट व्यवहार किया है। अपने ही मामा के घर में भांजे का ऐसा तिरस्कार ! आह, स्वार्थपरता और निर्दयता की हद हो गई।

इस तरह की उसकी विचार धारा चल ही रही थी कि राधा, मानों पिता की वेदना को समझ रही हो, चुपके से आकर उनकी कुर्सी के पीछे खड़ी हो गई। कुछ देर खड़ी रहने पर भी जब देखा कि पिताजी को उसके खड़ी होने का ज्ञान नहीं हुआ है, तब एकदम नजदीक जाकर पीछे से उनके सिर के बालों को अपनी छोटी-छोटी उङ्गलियों से सहलाने लगी।

वकील साहब ने एक दीर्घश्वास छोड़ा, मानो राधा के हाथ के स्पर्श ने अमृतधारा की वर्षा करके उनके तप्त हृदय को ठण्डक पहुँचा दी हो।

"पिताजी !" राधा ने धीरे से पुकारा।

"क्या बेटी ?"

"बालन को पुलिसवाले पकड़ ले गये हैं ?"

"हां"।

"बालन को पीटा भी है ?"

इस सवाल ने उनके हृदय को विदीर्ण कर दिया। अपनी छोटी बेटी को सच्ची बात बतलाने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। मुँह से अस्फुट सिर्फ "नहीं" शब्द निकला।

"रात में उसको पीटेंगे पिताजी ?"

"ना बेटी। नहीं पीटेंगे। मैंने मना कर दिया है।"

"पिताजी, बेचारा बालन ! कल और आज बेचारे ने कुछ नहीं खाया है। यहां जब आया तभी बहुत कुम्हलाया हुआ था। भैया और मैं—दोनों ने मां से कहा कि कम से कम थोड़ी कंजी

हीं उसे खाने को दे दो। माँ हमीं दोनों को डांटने लगी। पिता जी, बालन यहां रहने के विचार से आया था। उसने कहा था कि वह यहीं काम करेगा और रहेगा। जब माँ ने यह सुना तब उसी समय उसे चले जाने को कह दिया। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। भैया ने उसे देने के लिये सब जगह पैसा ढूँढा। मेरे पास एक अधन्नी थी। लेकिन भैया ने कहा, 'इससे कुछ नहीं होगा।' और बालन के पीछे दौड़ गया।"

इससे ज्यादा कुछ सुनने की शक्ति वकील साहब में नहीं थी। उन्होंने राधा से कहा, "बेटी, तुम जाकर सो जाओ।"

थोड़ी देर और खड़ी रहने के बाद बालिका भीतर चली गई।

❀ ❀ ❀

दूसरे दिन पौ फटते ही कृष्णन् कुट्टी उठ गया। घर में बाकी सब अभी सोये ही थे। वह झटपट कपड़े बदलकर घर से निकला। तेजी से आगे बढ़ा और थाने के सामने पहुँच गया। थाने के बारे में उसने सिर्फ सुना ही था। वहां के कायदे-कानून के बारे में उसे कुछ मालूम नहीं था। फिर भी एक आत्मविश्वास के साथ, बिना किसी डर के थाने के बरामदे में चला गया। भीतर एक बड़े हाल में एक तरफ उसने बालन को छाती पर हाथ बांधे, म्लान मुँह खड़े देखा, मानो वह किसी भारी विपत्ति की प्रतीक्षा कर रहा हो। एक साथ दोनों की चार आंखें हुईं। बालन की रुलाई बांध तोड़कर फूट पड़ी। स्थान और स्थिति—सब भूलकर कृष्णन् कुट्टी "मेरे बाला," कहते हुये दौड़कर उसके पास पहुँच गया। सब कुछ भुलाकर दोनों एक दूसरे को छाती से लगाकर आत्म विस्मृत से हो गये। दोनों एक दूसरे का नाम ले लेकर और अस्फुट शब्दों में बीच-बीच में कुछ कहते हुये फूट-फूटकर रोने लगे।

इन्स्पेक्टर साहब पहले ही थाने में पहुँच गये थे। वे बालन

पर लगाये अभियोग के बारे में सुन चुके थे। थाने में आते ही उन्होंने बालन को कटघरे से बुलवा लिया था और उसके सम्बन्ध में जो काग़ज़ थे, उन्हें देख रहे थे।

कृष्णन् कुट्टी का आना और दौड़कर बालन से जा लिपटना तथा दोनों के प्रेम का प्रदर्शन वे चुपचाप देखते रहे। समवयस्क बच्चों के मधुर मिलन का दृश्य देखकर उनका हृदय द्रवीभूत हो गया। इन्स्पेक्टर साहब को अपने काम के सिलसिले में अब तक जो अनुभव हुआ था, उसमें ऐसा निष्कलंक हृदयस्पर्शी प्रेम-पूर्ण दृश्य कभी देखने को नहीं मिला था। वे स्तब्ध हो चुपचाप मुग्धभाव से उसका आनन्द लेते रहे—मानो वह एक दुर्लभ दृश्य हो।

आखिर वे उठकर उन बच्चों के पास गये। बालन और कृष्णन् दोनों एक दूसरे को छोड़कर अलग-अलग खड़े हो गये। बड़े अफसर को दोनों गौर से देखने लगे। दोनों के दिल धड़क रहे थे, कुछ सूझ नहीं रहा था। इन्स्पेक्टर भी मंत्रमुग्ध की तरह खड़े रहे। तब कृष्णन कुट्टी को सम्बोधन करते हुये बोले, "तुम कौन हो, बच्चे ?"

कृष्णन् कुट्टी ने जवाब दिया, "मेरे पिताजी का नाम शंकर पिल्ला है। वे एक वकील हैं। यह बालन है, पिताजी का भांजा। कल यह हमारे घर आया था। मां ने इसे निकाल दिया। इसने कुछ खाया नहीं था। मैंने इसे अपनी अंगूठी देनी चाही। इसने लेने से इनकार किया। लेकिन मैं इसकी गोद में अंगूठी फेंककर भाग गया। मैंने अंगूठी बेचकर कुछ खरीदकर खाने के लिये इससे कहा था। मां मेरी उङ्गली में अंगूठी न देखकर बहुत नाराज़ हुई और यह सुनकर कि मैंने अंगूठी बालन को दे दी है, उन्होंने मुझे पीटा और कमरे में बन्द कर दिया। जब पिताजी घर आये, मां ने उनसे कहा कि बालन अंगूठी चुराकर भाग गया है।

पिताजी ने इसे पुलिस से पकड़वा दिया। बालन ने अंगूठी नहीं चुराई थी। मैंने ही उसे दी थी। यही कहने के लिये मैं यहां दौड़ा आया हूँ। बालन को छोड़ दिया जाय। मैं उसे अपने साथ ले जाऊँगा।

एक सांस में ही दर्दभरी आवाज में कृष्णन् सब कुछ कह गया। बालन चुपचाप खड़े-खड़े रो रहा था। इन्स्पेक्टर साहब को कृष्णन् कुट्टी की सच्चाई में कोई सन्देह नहीं हुआ। वे दोनों बच्चों को बुलाकर अपने साथ ले गये और अपनी मेज़ के पास पड़ी एक बेंच पर उन्हें बिठा दिया। बालन के सिर पर हाथ फेरते हुये उन्होंने कहा, "डरो मत। तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा।" और कुर्सी पर बैठ गये।

"तुम्हारा नाम क्या है ?" इन्स्पेक्टर साहब ने पूछा।

"कृष्णन् कुट्टी।"

"और इसका नाम बालन है ?"

"हां"।

"ठीक है। तुम्हारी बातें सुनकर मुझे विश्वास हो गया है कि बालन ने चोरी नहीं की है। तुम दोनों को मैं अभी छोड़ दूँगा। लेकिन इस घटना के बारे में मैं पूरा विवरण एक बार और सुनना चाहता हूँ। शुरू से, तुम जो कुछ जानते हो, सब सुनाओ।"

सवेरे बालन के घर आने से लेकर रात को पिताजी के घर लौटने तक की और उसके बाद की घटनायें तथा रात को बिस्तरे पर पड़े-पड़े उसके यह निश्चय करने की कि सवेरा होते ही वह थाने में जाकर सब बातें बतला देगा, सब बातें विस्तार से कृष्णन् कुट्टी ने सुना दीं।

कृष्णन् कुट्टी के पिता का नाम सुनते ही इन्स्पेक्टर साहब बालन को एक खास दिलचस्पी के साथ देखने लगे और अपने भीतर एक विशेष प्रसन्नता का अनुभव करने लगे। बालन को

देखकर किसी गहरी विचार धारा में उनका हृदय कल्लोलित होने लगा था। एक नूतन आनन्द की अनुभूति से उनका मुखमंडल प्रकाशित हो गया और उनकी आंखें चमक उठीं।

बालचन्द्र का चेहरा रोते-रोते फूल गया था। और उसकी डबडबाई आंखें लाल हो गयी थीं। फिर भी उसका मुखमंडल कोमलता, कुलीनता और सलोनेपन की अमिट छाप लिये आकर्षक प्रतीत होता था।

कुण्णन् कुट्टी का बयान खतम होते ही इन्स्पेक्टर साहब उठे और वहाँ के दूसरे अफसरों को बुलाकर काम के बारे में आवश्यक निर्देश दे दिये। फिर दोनों बच्चों से कहा, "तुम दोनों मेरे साथ चलो। मैं तुम लोगों को तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा।"

दोनों बच्चे उठे। इन्स्पेक्टर साहब का स्नेहपूर्ण व्यवहार देखकर उन पर बालकों का विश्वास हो गया था। दोनों के दिल से भय और शंका मिट चुकी थी और चेहरा प्रसन्न मालूम पड़ता था। फिर भी, बालन के चेहरे से पिछले दिनों के अनुभवों का असर अभी पूरा उतरा नहीं था।

एक रिक्शा बुलवाकर दोनों बच्चों को इन्स्पेक्टर साहब ने अपने घर पहुँचाने का आदेश दिया और स्वयं अपनी साइकल पर साथ हो लिये।

घर पहुँचकर बच्चों को नाश्ता कराया। फिर उनके साथ आत्मभाव से खेल तमाशे की बातें कीं। अपने घर में सुरुचि से सजाये अच्छे-अच्छे चित्र और दूसरी चीजें उन्हें दिखायीं। बच्चे भी सब दुःखदायी बातें भूलकर उनके आनन्द में सम्मिलित हुये।

थोड़े ही समय में वहाँ का वातावरण आनन्दमय हो गया। पुलिस अफसर और अपराधी के बदले अब वे ही आत्मीय से

दीखते थे और एक दूसरे की संगति में एक अपूर्व आह्लाद का अनुभव कर रहे थे।

❀ ❀ ❀

सूर्योदय के बहुत देर बाद वकील शंकर पिल्ला की नींद टूटी। देवकी अम्मा और राधा उनके पहले ही उठ गई थीं। उठने पर भी दोनों एक दूसरे से मिलने में हिचक रही थीं। कृष्णन कुट्टी घर में नहीं है, यह बात सब से पहले राधा को मालूम हुई। उसने चारों तरफ खोजा पर भाई का पता नहीं था। तब मां के पास जाकर उनसे पूछा। पहले तो देवकी अम्मा ने उदासीन भाव से कह दिया कि मैंने नहीं देखा है। लेकिन तुरन्त जब पिछले दिन की घटनाओं से मिलाकर कृष्णन् के न दिखाई देने की बात सोची तब उनका कलेजा धड़कने लगा।

वकील साहब अपनी नित्यक्रिया से निवृत्त होकर आ गये तब राधा ने जाकर उनसे कृष्णन् कुट्टी के घर में नहीं होने की बात कही। पिता का क्लान्त हृदय और भी उद्विग्न हो गया। उन्हें डर लगा कि पिछले दिन की घटनाओं के फलस्वरूप लड़का कहीं भाग तो नहीं गया है। राधा से उन्होंने घर में सब जगह देखने को कहा।

कृष्णन् कुट्टी के स्कूल जाने का समय हो गया। पिता की अनुमति के बिना आज तक वह कभी घर से बाहर नहीं गया था। वकील साहब की चिन्ता बढ़ने लगी। वह कहां गया होगा, कहाँ ढूँढा जाय? कल से वे सन्तप्त तो थे ही, अब पुत्र की बात लेकर उनकी हालत और भी डांवाडोल हो गई। इतने में भीतर से दबी हुई रुलाई की आवाज उनके कान में पड़ी। वह कृष्णन् कुट्टी की मां की रुलाई थी। वकील साहब दुःख में जर्जरित हो रहे थे। किधर जाना, क्या करना—उनकी समझ में नहीं आ रहा

था। लेकिन अन्दर से आने वाली रुलाई की आवाज़ सुनकर वह जैसे ही कृष्णन् कुट्टी की खोज में निकल पड़े।

❀ ❀ ❀

एक घण्टे बाद वकील साहब पसीने में तरबतर विषाद और निराशा का भाव लिये घर लौटे। कृष्णन् कुट्टी का कहीं पता नहीं लगा था। देवकी अम्मा ने जब यह सुना तब ज़ोर से फूट पड़ीं। राधा भी सिसक कर रोने लगी। वकील साहब बिना कुछ बोले अपने कपड़े पहिनकर पूरी खोजबीन के लिये निकलने की तैयारी करने लगे। उन्होंने राधा को पुकारा। राधा दौड़ी आयी। पिता ने कहा, "बेटी, रोओ मत। मैं कृष्णन कुट्टी को लेकर ही लौटूंगा। थाने में जाकर बालन को छुड़ाकर यहां भेज दूँगा। मेरे लौटने तक उसे यहां से जाने नहीं देना।"

राधा में कुछ पूछने या कहने की शक्ति नहीं थी। उसके गाल आंसुओं से भीग गये थे। आंखें रोते-रोते सूज गई थीं। पिता के आगे २ वह कमरे से निकल आयी। और भाई की बाट जोहने वाली उसकी तृषित आंखें फाटक की तरफ गईं। "ऐं, कौन आ रहे हैं? पिता जी भैया आ गया। बालन भी है" कहती हुई फाटक की तरफ बेतहाशा दौड़ी और कृष्णन कुट्टी से लिपट कर पूछने लगी, "तुम कहां गये थे? क्यों बिना कहे चले गये?"

राधा को मुँह से भैया और बालन शब्द सुनकर माता-पिता दोनों बाहर निकल आये, देखा कृष्णन और बालन के साथ पुलिस इन्स्पेक्टर भी थे। माता-पिता की खुशी का क्या पूछना!

"कृष्णन, तुम कहां गये थे?" वकील साहब ने बेटे से सवाल किया और इन्स्पेक्टर की ओर देखकर कहा, "आपको बहुत कष्ट हुआ। कृपया बैठिये," और कुर्सी उनके आगे कर दी।

राधा कृष्णन कुट्टी का हाथ पकड़े अपनी खुशी प्रकट करती बोली, भैया तुम क्यों चुपके से निकल गये ? सबों को कितना परेशान कर दिया। पिताजी ने चारों तरफ तुम्हें ढूँढा और फिर ढूँढने के लिये निकलने वाले थे। तुम कहां गये थे ?"

"मैं सब बातें बतलाऊँगा।" कहते हुए इन्स्पेक्टर साहब कुर्सी पर बैठ गये। वकील साहब भी बैठ गये।

"तो कृष्णन कुट्टी बिना किसी को कहे ही निकल पड़ा था। तब तो सबों को बड़ी परेशानी हुई होगी," इन्स्पेक्टर साहब ने कहा।

"परेशानी की बात कहते हैं ? मन में क्या-क्या डर पैदा हो गया था, यह मैं ही जानता हूँ। बिना घर में कहे यह कभी बाहर नहीं जाता था।"

"इन बच्चों के साथ मुझे यहां देखकर आपको क्या ख्याल हो रहा है ?"

"अगर मेरा अन्दाज़ ठीक है तो मुझे उस पर अभिमान है।"

"ठीक है, एक पिता की हैसियत से कृष्णन कुट्टी जैसे एक पुत्र पर आपको अभिमान होना ही चाहिये।"

"लेकिन बालन के बारे में सोचकर मैं ग्लानि में डूब रहा हूँ। वह मेरा इकलौता भांजा है।"

"मुझे सब मालूम हो गया है। कृष्णन कुट्टी से मैंने सब बातें मालूम कर ली हैं। मैं जानता हूँ, इस संबन्ध में आप दोषी नहीं हैं। लेकिन ···।"

"मैं समझ सकता हूँ कि आप क्या कहने जा रहे हैं। लेकिन इसमें मेरी गलती कम नहीं।····· मैं उसके लिए प्रायश्चित करूँगा।"

"क्यों, इस बालक को यहां रखकर मरवा देना है ?" इन्स्पेक्टर का चेहरा गम्भीर हो गया। उनकी आंखों से आग बरसने

लगी। उन्होंने अपनी जेब से अंगूठी निकाली और देवकी अम्मा की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा, "लीजिये अपनी अंगूठी जिसके लिये आपने निर्दोष बालन पर चोरी का इलजाम लगाया है।"

देवकी अम्मा सिर नीचे किये खड़ी थीं। ऊपर आंख उठाकर देखना उनके लिये मुश्किल हो रहा था। इन्स्पेक्टर ने आगे कहा, "आपके लड़के की उम्र का एक लड़का भूखा-प्यासा आपके घर आया था। आपने उसे एक मुट्ठी अन्न देने की सहानुभूति नहीं दिखाई। और उल्टे उस पर चोरी का अपराध लगाया।"

देवकी अम्मा हाथों से चेहरा ढककर रोने लगीं। इन्स्पेक्टर बोलते गये, "एक नन्हें से बच्चे के साथ हृदयहीन व्यवहार··· और झूठा इल्जाम!"

वे वकील साहब की ओर मुड़कर बोले, "भाई साहब, आप अपने पाप का प्रायश्चित करने की बात सोच रहे हैं। लेकिन मैं कहता हूँ कि इसकी जरूरत नहीं है। इस बच्चे और उसकी मां का आदर के साथ संरक्षण करने के लिये जो व्यक्ति जिम्मेवार है वह इस दुनिया में अभी जिन्दा है।"

वकील साहब जो अब तक इन्स्पेक्टर की बातें चुपचाप सुन रहे थे, आश्चर्य चकित होकर एकाएक उठ खड़े हुए और बड़े उद्वेग से पूछा, "क्यों, आप करुणाकरन नायर ही हैं क्या?"

देवकी अम्मा ने सिर उठाकर उन्हें ध्यान से देखा। उन्होंने भी पहचान लिया।

इन्स्पेक्टर ने अपने मौन भाव से ही उनके अनुमान का समर्थन किया। वकील साहब आगे बढ़े और उनका हाथ पकड़कर बोले, "करुणाकरन नायर!" वे गद्‌गद् हो रहे थे। "आह, उसी समय मुझे सन्देह हुआ था जब तीन दिन पहले मैंने आपको थाने के सामने देखा था। लेकिन आप में इतना परिवर्तन असंभव मानकर

उसके बारे में ज्यादा सोचा ही नहीं । जो भी हो। ईश्वर को धन्यवाद है कि आखिर बालन के पिता आ गये।"

"बालन के पिता ?" कृष्णन कुट्टी और राधा दोनों एक साथ बोल उठे। कौन पिताजी ? ये हमारे बालन के पिताजी हैं ?"

वकील साहब बैठ गये थे और थोड़ा शांत हो गये थे। वे बोले "हां, बच्चे, ये ही बालन के पिता हैं।"

बालन को अपने पिता का चेहरा याद नहीं था। मां से जो कुछ उनके बारे में सुना था उससे उसके मन में अपने पिता के सम्बन्ध में एक चित्र खिंच गया था। उस चित्र को अपने सामने आज वह मूर्तिमान देखकर आत्मविस्मृत-सा हो रहा था। "ये ही बालन के पिता हैं" यह वाक्य उसके कानों में पड़ते ही वह पिता की गोद में जा गिरा।

इस तरह पिता और पुत्र का मिलना हुआ। इस मिलन के स्वर्गीय आनन्द में दोनों डूब गये। एक गाढ़ आलिंगन 'पाश में बँधे' पिता-पुत्र का हृदय एक होकर स्पंदित होने लगा।

बालन की आंखों से आनंदातिरेक से आंसू की धारा बह रही थी। पिता को पकड़े वह धीमे स्वर में "पिताजी, पिताजी" कह रहा था।

पुलिस इन्स्पेक्टर करुणाकरन नायर भी अपने आंसू नहीं रोक सके। कृष्णन् और राधा उनके पास आकर खड़े थे। उनके चेहरे पर हर्ष और आनंद की लहरें खेल रही थीं।

देवकी अम्मा का भी दिल, इस दृश्य को देखकर पिघल गया और अश्रुपूरित नेत्रों वाले उनके चेहरे पर भी एक प्रसन्नता की झलक शोभायमान हो गई।

वह आगे बढ़ीं और करुणाकरन नायर की गोद से बालन को उठाकर अपनी गोद में ले लिया और उसे दुलारते हुए करुणाकरन नायर से कहा, "भाई जी, मुझसे बड़ा भारी अपराध हुआ

है। मुझे क्षमा कीजिये।"

करुणाकरन नायर ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "नहीं भाभी, क्षमा मुझसे नहीं, भाई साहब से मांगनी चाहिये।"

मैंने क्षमा कर दिया, देवकी तुम्हें अपने व्यवहार पर हृदय से पश्चाताप हुआ है, यह देखकर मुझे सन्तोष हो रहा है। क्या ही अच्छा होता कि इस अवसर पर हमारी जानकी भी यहां होती।"

"आपसे आकर पहले मिल लेने के बाद ही मैं वहाँ जाना चाहता था। मैं आपसे मिलने वाला ही था। अब हमें वहाँ जाना चाहिये। आप भी जरूर चलें। करुणाकरन नायर के इन शब्दों ने सारी कटुता और विषाद को धो डाला और सबों के मन को प्रफुल्लित कर दिया।

"मैं भी साथ ही चलूँगी," देवकी अम्मा ने कहा। "हाँ, हम भी साथ चलेंगे," वकील साहब ने कहा, "आज हम सबों के लिये एक बड़े भाग्य का दिन है। आज हमारे जीवन में एक नया दिन शुरू हो रहा है। उसका प्रारम्भ अपने खानदानी घर में ही होना चाहिये। सब लोग जल्दी तैयार हो जाओ। करुणाकरन नायर से इतने सालों की उनकी कहानी भी सुननी है।"

"कहानी क्या सुनियेगा, भाई साहब?" करुणाकरन नायर ने अपना महत्व अनुभव करते हुए कहा, "घर से रूठ कर मेरा जाना, सेना में भरती होना, दुनियाँ का चक्कर लगाना, जिस जहाज में हम थे, उसका डूबना, अन्त में युद्ध बन्द होने के बाद स्वदेश लौटना और पुलिस में नौकरी पाना, एक लम्बी कहानी है। इसके लिये काफी समय चाहिये।"

बालन जो चुपचाप बैठा था, बोल उठा, "लेकिन पिताजी, आपने एक चिट्ठी तक नहीं भेजी।"

"चिट्ठी नहीं भेजी तो क्या हुआ ? मेरा लड़का तो मुझे मिल गया। यह मेरे लिये काफी है।"

तुरन्त एक हृदयहारी मुस्कान के साथ वालन ने कहा, "मेरे लिये भी आनन्द का यही कारण है। चिट्ठी नहीं मिली तो क्या, मेरे पिताजी तो मिल गये। यही भगवान् की कृपा है।"

Durga Sah Municipal Library,
Naini Tal,
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल